स्वामी विवेकानन्द

विवेकानन्द जन्मशती-जयन्ती प्रकाशन

(सन् १८६३-१९६३)

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी-१

प्रकाशक :
मंत्री
विवेकानन्द जन्मशती-जयन्ती समिति,
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम,
वाराणसी-१

मई, १९६३ ई० प्रथम संस्करण ३,०००

मुद्रक
नरेन्द्र भार्गव
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी

रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य हिन्दी, अंग्रेजी तथा
वंगला में प्राप्य है। विवरण के लिए निम्न
पते पर पत्र-व्यवहार करें।

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम

वाराणसी-१

प्रकाशकीय निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित करने का उद्देश्य यह है कि हिंदी भाषा-भाषी युवक सज्जनों के संमुख उन जगद्वन्द्य स्वामी विवेकानन्दजी की जीवनी तथा आध्यात्मिक प्रेरणाप्रद संदेश प्रस्तुत करना—जिनकी शताब्दी जयन्ती इसी साल (१९६३) मनायी जा रही है। आज राष्ट्रीय-उत्थान के समय स्वामीजी का नव-जीवनप्रद तथा उत्साहपूर्ण संदेश भारतीय नवयुवकों को मातृभूमि के समृद्धयर्थ आगे बढ़ाने के लिये पथ-प्रदर्शक बनेगा। अत्यंत सरल भाषा में लिखी गई यह पुस्तक खासकर ऐसे सज्जनों के लिये प्रकाशित की जा रही है जो इसी विषय की कीमती पुस्तकें खरीद नहीं सकते, परंतु जो स्वामीजी के ओजस्वी जीवनी के साथ परिचय प्राप्त करने की उत्सुकता रखते हैं। इस पुस्तक का पठन-पाठन स्वामीजी की उस विस्तृत जीवनी की प्रस्तावना होगी जो संपूर्ण मानवता का सांस्कृतिक तथा दार्शनिक इतिहास एवं विकास को प्रतिबिंबित करने के लिये आदर्श-भूत है।

इस पुस्तक के लेखक "रामकृष्ण अद्वैताश्रम, वाराणसी" के अध्यक्ष स्वामी अपूर्वानन्दजी हैं। इसी से स्वामीजीकी जीवनी की घटनाओं का तथा उनके विचारों का संकलन अत्यंत विश्वसनीय है। आशा है, जिन नवयुवकों को यह पुस्तक समर्पित की जा रही है, उनके लिये यह पर्याप्त नव विचार-शक्ति का साधन बनेगी तथा उनमें त्यागमय जीवन की भावना जागृत करेगी जो कि इस समय राष्ट्रीय पुनरुत्थान के लिये अत्यंत आवश्यक है।

यह पुस्तक पहले सरल परंतु प्रभावशाली बंगला भाषा में लिखी गई थी। आशा है हिंदी पाठकों के लिये भी यह वैसे ही प्रभावपूर्ण तथा प्रेरणाप्रद सिद्ध होगी। पुस्तक के अंत में स्वामीजी के कुछ ऐसे चुने

वचनामृत दिये गये हैं जो उनके आध्यात्मिक अनुभवों की सच्ची तथा आकर्षक शक्ति प्रकट करने में पूर्णतया समर्थ हैं।

अंत में हम मूल लेखक स्वामी अपूर्वानन्दजी के अत्यधिक ऋणी हैं। उसी प्रकार श्री टी० ए० भंडारकर, श्री विश्वनाथ मुखर्जी तथा श्री वीरेश्वर भट्टाचार्य के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिन्होंने इस पुस्तक को अंतिम रूप प्रदान किया। बनारस ब्लाक वर्क्स एवं ऐसे अनेक व्यक्तियों को भी हम धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इस पुस्तक को प्रकाशित करने में सहायता पहुँचाई, विशेपतया "श्री भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी के" हम अत्यंत आभारी हैं जिन्होंने पुस्तक प्रकाशन का संपूर्ण व्ययभार सहर्ष स्वीकृत किया है।

---प्रकाशक

प्रस्तावना

साठ वर्ष हुए स्वामी विवेकानन्द इस संसार को छोड़कर चले गये हैं, किन्तु उनके जीवन और वाणी का प्रभाव तथा प्रेरणा अभी तक सजीव बनी हुई है। क्रमशः इस देश तथा विदेशों में उसका आदर हो रहा है और सभी स्तरों के मनुष्यों को उससे प्रेरणा मिल रही है। केवल उन्तालीस वर्षों तक ही वह जीवित थे। इस अल्प अवधि के जीवन में उन्होंने जो कार्य कर दिखाया, वह यथार्थ में ही अलौकिक है। उनके गुरुदेव भगवान् श्रीरामकृष्ण ने उनके सम्बन्ध में जो अलौकिक दर्शन किया था, वे एकदम काल्पनिक नहीं हैं। स्वामीजी के जीवन का अनुसन्धान करनेवालों तथा चिन्तनशील व्यक्तियों के निकट वह सहज ही में प्रकाशित होगा।

स्वामी जी की व्यक्तिगत आध्यात्मिक साधना, परिव्रज्या, उनका अपूर्व पवित्र चरित्र, गम्भीर पाण्डित्य, प्रखर वाग्मिता, तीव्र स्वदेश प्रेम, दीन दरिद्र निर्यातित और अवहेलित जनों के प्रति उनकी उद्वेल सहानुभूति, उनके तेज, वीर्य, ज्ञान, वैराग्य और मानवसेवा, उनके भारतीय जातीयता का उद्‌बोधन, विश्वहित में आत्म-नियोग, प्राच्य और प्रतीच्य के चिताराज्य में उनके अवदान आदि का प्रत्येक भाव ही अपने महत्त्व और माधुर्य की गम्भीरता से हमारे चित्त को विशेष रूप से आकृष्ट करता है। उनका अपूर्व जीवन सभी देशों के मनुष्यों के लिए सभी समय अनुशीलन-योग्य है। समाज के सभी स्तरों के मनुष्य उससे प्रचुर शिक्षा तथा उद्दीपन प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु इस छोटे से जीवनी-ग्रन्थ में हम उनके विशाल, विपुल और उत्तुङ्ग जीवन पर अति अल्प ही प्रकाश डाल सके हैं।

स्वतन्त्र भारत में आज स्वामी विवेकानन्द के जीवन और वाणी का अत्यधिक चिन्तन तथा अनुशीलन अत्यन्त आवश्यक है। पन्द्रह वर्षों से

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद भी जिन समस्याओं ने हमारे जातीय जीवन को दबा रखा है और जिनका समाधान हमें नहीं मिल रहा है, उन समस्याओं की मीमांसा के अनेक संकेत हम स्वामी जी के जीवन और वाणी से प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि वे राजनैतिक नहीं थे तथापि भारतीय जातीय संगठन, जागरण, एकता तथा बल-सञ्चय के लिए वह सुचिन्तित अनेक निर्देश लिख गये हैं। विशेष रूप से हमारा देश जब बाहरी शत्रुओं के द्वारा आक्रान्त हुआ है। जातीय जीवन के इस संकट पूर्ण मुहूर्त में स्वामीजी की जागृति की वाणी के स्मरण करने का अब समय आया है। उन्होंने ऋग्वेद के इस मंत्र की आवृत्ति कर हमें संघबद्ध होने के लिए आह्वान किया था--

"संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते ।।" इत्यादि

अर्थात्—तुम लोग एकताबद्ध हो जाओ और एक ही प्रकार का वाक्य बोलो। तुम्हारे मन समान रूप से भावित हों। प्राचीन समय में जिस प्रकार देवताओं ने एकमत होकर यज्ञांश लिया था, तुम लोग भी उसी तरह एकमत होकर धन ऐश्वर्य आदि प्राप्त करो। ...तुम्हारे संकल्प समान हों, हृदय समान तथा मन समभावात्मक हों जिससे तुम लोग एकताबद्ध हो सको, उसी के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहो।

हमें जो राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है, वह लगभग साठ वर्षों के निरन्तर राजनैतिक आन्दोलन का फल है। किन्तु स्वतन्त्र भारत में अभी तक सांस्कृतिक-जागरण अच्छी तरह आया नहीं है। वे कार्य का श्रीगणेश कर गये हैं। इस भारत को वह महाभारत में परिणत करने का सम्पूर्ण दायित्व भविष्य के भारतवासियों के ऊपर छोड़ गये हैं। उनकी जन्म-शत-वार्षिक जयन्ती के उपलक्ष्य में आज वह बात हमें विशेष रूप से स्मरण में आ रही है। ...भारत का समुज्ज्वल भविष्यत् अतीत के सुमण्डित गौरव को भी मलिन कर देगा। वह चित्र उन्होंने हमारे सामने ला दिखाया है।

स्वामी विवेकानन्द को पुराने इतिहास के भीतर किसी तरह आवद्ध नहीं रखा जा सकता। विंश शताब्दि के अंतिमार्ध में जिस प्रकार की भावधाराओं तथा घटना-परम्पराओं की सूचना दिखलाई पड़ रही है, स्वामी जी ने उनके सभी को मानो अपनी अलौकिक दूर-दृष्टि से देखा था, सावधान होने की वाणी सुनायी थी और पथ का निर्देश दिया था। हमारी सम्मुख-यात्रा, संग्राम तथा भविष्य परिकल्पनाओं के भीतर यदि हम इस अलोक-सामान्य पुरुष-प्रवर को साथ लेकर चलते हैं तो हमें लाभ ही होगा, हानि नहीं होगी। स्वामी जी को युगाचार्य कहना आलंकारिक प्रयोग नहीं है। वह अक्षरशः सत्य है।

प्रस्तुत संक्षिप्त जीवनी-ग्रंथ स्वामी विवेकानन्द की जन्मशतवार्षिक जयंती के उद्‌वोधन के समय यदि पाठक-पाठिकाओं को इस देवमानव के प्रति थोड़ा-वहुत भी आकृष्ट कर सके और उनके सम्वन्ध में और भी अधिक जानने की इच्छा जगा सके तो मैं अपने को धन्य समझूंगा।

विनीत ग्रन्थकार

स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द

एक

बंगला सन् १२६९ के पौष संक्रान्ति, तदनुसार १८६३ ई०, जनवरी १२, कृष्णा सप्तमी, सोमवार—यह दिन संसार के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखित होकर स्मरणीय तिथि में परिणत हुआ है। उस दिन ब्रह्म-लोक के ऋषि का आविर्भाव युगावतार भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के प्रधान पार्षद के रूप में हुआ। सुदूर अतीत के द्वापर युग में इस नर-ऋषि का आगमन मानव-देह में भगवान् श्रीकृष्ण के सखा तथा युगधर्म प्रवर्त्तन के प्रधान सहायक रूप से हुआ था। युग के प्रयोजन से वही ऋषि वर्तमान में कलकत्ते के सिमुलियापल्ली में विश्वनाथ दत्त और भुवनेश्वरी देवी के प्रथम पुत्र रूप से नरदेह में आविर्भूत हुए।

उस दिन सोमवार—शिवजी का दिन—मकर सप्तमी थी। कलकत्ता नगर उत्सव में उत्फुल्ल था। मकरवाहिनी के पुण्य स्नान के लिए जन समूह दल के दल चल रहे थे। सूर्योदय के कुछ क्षण पहले ६ वजकर ४९ मिनट पर भुवनेश्वरी की गोद को प्रकाशित करते हुए भुवन-मंगल देव-शिशु का आविर्भाव हुआ। दत्तगृह आनन्द-कोलाहल से पूर्ण हो गया। मंगल शंख वज उठे। हुलूध्वनि के साथ घर की महिलाओं ने नवजातक को वरण कर लिया।

वाराणसी के वीरेश्वर महादेव की आराधना से पुत्र लाभ करके अपुत्र भुवनेश्वरी का हृदय विमलानन्द से पूर्ण हो गया। स्वप्न-वृत्तान्त स्मरण करके जननी ने पुत्र का नाम वीरेश्वर रखा। घरेलू नाम पुकारने का हुआ 'बिले'। शुभ अन्नप्राशन के समय पिता ने पुत्र का नाम 'नरेन्द्रनाथ' रखा। यही नरेन्द्रनाथ भविष्य में स्वामी विवेकानन्द नाम से संसार में प्रसिद्ध

हुए। उनकी आध्यात्मिक साधना, परिव्रज्या, अपूर्व पवित्र चरित्र, गम्भीर पाण्डित्य, अपूर्व वाग्मिता, प्रखर स्वदेशप्रेम, दीन दरिद्र निर्यातित और अवहेलित जनों के प्रति उद्वेल सहानुभूति, तेज, वीर्य, ज्ञान, वैराग्य, मानव-सेवा, भारतीय जातीयता का उद्‌बोधन, विश्व के हित के लिए आत्मनियोग, प्राच्य और प्रतीच्य के चिन्ताजगत् में अमूल्य अवदान तथा समस्त मानव जगत् के ऊपर अप्रतिहत प्रभाव तथा उनकी प्रतिक्रिया की हम इस छोटी जीवनी में संक्षेप में चर्चा करेंगे।

❀ ❀ ❀ ❀

पिता विश्वनाथ दत्त अंग्रेजी और फारसी भाषा में सुपंडित, कलकत्ता हाईकोर्ट के एटार्नी, वीर, गम्भीर, विद्यानुरागी, बुद्धिमान्, संगीत आदि में प्रवल अनुरागी, गरीवों के प्रति सदा सहानुभूति-सम्पन्न, दान में मुक्तहस्त, स्वजनों के प्रतिपालक थे।

वचपन में ही नरेन्द्रनाथ की असाधारण शक्ति दिखलाई देने लगी थी। एक वृद्ध कुटुम्बी के साथ रात्रि में सोते समय उनके मुख से सुन-सुनकर 'मुग्धवोध' व्याकरण के सभी सूत्रों को वालक ने कण्ठस्थ कर लिया था। माता के मुख से सुन-सुनकर रामायण और महाभारत के अनेकांशों की आवृत्ति वालक सुन्दररूप से कर सकता था। वचपन से ही नरेन्द्रनाथ वहुत मेधावी, वुद्धिमान, निर्भीक, साहसी, रहस्यप्रिय, श्रुतिधर, स्मृतिधर थे। जिसे एकवार पढ़ते या सुनते थे, वह हमेशा के लिए उनके स्मृतिपटल पर अंकित हो जाता था। रामभक्त, अद्‌भुत्‌कर्मा, महावीर हनुमान जी नरेन्द्रनाथ के जीवनादर्श के प्रतीक थे। साहस, वल, वीर्य, और पवित्रता की मूर्ति हनुमानजी की पूजा उन्होंने निद्रित भारत के घर-घर में प्रचलित करना चाहा था।

परवर्ती काल में उन्होंने कहा था—"सारे देश में महावीर की पूजा प्रचलित करा दो, दुर्वल जाति के सामने इस महावीर्य का आदर्श उपस्थित कर दो, शरीर में वल नहीं है हृदय में साहस नहीं है, क्या होगा इन जड़ पिण्डों से ? मेरी इच्छा होती है कि घर-घर में महावीर की पूजा हो।"

वचपन से ही नरेन्द्रनाथ वहुत जिद्दी थे। जिसे एकवार पकड़ते किसी भी बाधा से उसे नहीं छोड़ते थे। शासन-वाक्य, धमकी, डर दिखाना सभी व्यर्थ हो जाते थे। माता अशान्त पुत्र को गोद में लिये कहा करती थी—"मैंने वहुत मनौती करके, शिव के मन्दिर में धरना देकर एक पुत्र की कामना की थी, परन्तु उन्होंने भेज दिया एक भूत को।" परवर्ती काल में 'विले' के वचपन की उद्दण्डता की वात पाश्चात्य शिष्यों को वताते हुए वृद्धा भुवनेश्वरी देवी गर्व के साथ कहा करती थीं—"क्या कहूँ, उसे सम्हालने के लिये दो नौकरानियाँ आठों पहर उसके साथ-साथ फिरती थीं।" और भी कहती थीं—"वचपन से ही नरेन्द्र में एक बड़ा भारी दोष था। क्रोध आने पर उसमें हिताहित का बोध नहीं रहता था। घर के असवावों को तोड़-फोड़कर नष्ट कर डालता था।"

फिर वचपन से ही ध्यान-परायणता थी इनका सहजात संस्कार। एक-दिन साथियों को लेकर शिवमूर्ति के सामने खेल-खेल में राख मलकर नरेन्द्रनाथ ध्यान में बैठे। थोड़ी देर वाद एक वालक चिल्ला उठा—'साँप-साँप'। साथी लोग दरवाजा खोलकर भाग गये। किन्तु नरेन्द्रनाथ ध्यान-मग्न ही बैठे रहे। हल्ला सुनकर लोग दौड़ आये, साँप देखकर सभी डर गये। अव उपाय क्या हो? साँप को भगाने की चेष्टा करने पर यदि वह हानि कर बैठे—इस भय से सव लोग चुपचाप खड़े रहे।

कुछ क्षणों के अनन्तर फण समेटकर साँप चला गया। बहुत खोजने पर भी उसका पता न लगा। तव तक नरेन्द्रनाथ ध्यान में तल्लीन थे। इसके बाद वह घर के वाहर लाये गये। बाद में सव सुनकर उन्होंने कहा—"मुझे तो कुछ भी पता नहीं था।"

श्रीरामकृष्णदेव ने दक्षिणेश्वर में एक दिन कहा था—"नरेन्द्र ध्यान-सिद्ध महापुरुष है। जिस दिन वह जान सकेगा कि वह कौन है, उस दिन इस संसार में नहीं रहेगा। दृढ़ संकल्प के द्वारा योगमार्ग से उसी क्षण शरीर छोड़कर चला जायगा।"...

६ वर्ष की आयु में नरेन्द्र को पाठशाला में भेजा गया, किन्तु थोड़े

ही दिनों के भीतर सहपाठियों से सीखे हुए अनेक अश्लील शब्द कहते देख-कर पिता ने उसका पाठशाला जाना बन्द करके घर में ही शिक्षक के अधीन पढ़ाई का प्रबन्ध कर दिया।

सात वर्ष की अवस्था में जब नरेन्द्र को विद्यासागर-प्रतिष्ठित मेट्रो-पलिटन इन्स्टीट्यूशन स्कूल में भरती कर दिया गया, तब वह पहले अंग्रेजी पढ़ने में किसी तरह राजी नहीं हुए—"वह विदेशी भाषा है, उसे क्यों पढ़ूँगा। उसकी अपेक्षा अपनी भाषा सीखना अच्छा है।"—यही थीं उनकी बात। इस तरह कई मास बीत गये। उसके पश्चात् जब उनके मन में परिवर्तन हुवा तब वह अत्यन्त उत्साह से अंग्रेजी पढ़ने लगे। सुना गया है, अपनी माता से ही उन्होंने पहले-पहल अंग्रेजी वर्णमाला सीखी थी...।

बाल्यकाल से नरेन्द्रनाथ 'भय' किस चीज का नाम है, नहीं जानते थे। हौवे का भय, भूत का भय, ब्रह्मराक्षस का भय, सुनकर वह हँसकर उसे उड़ा देते थे। किसी ने कहा है इसी से उसपर विश्वास कर लेना, उनके स्वभाव के विरुद्ध था। किसी का प्रत्यक्ष प्रमाण न पाने तक, वह उसपर विश्वास नहीं करते थे।

स्कूल का पाठ याद करने म उन्हें अधिक समय नहीं लगता था। शेष समय कैसे कटे ? इस कारण उसी उमर में मुहल्ले के लड़कों को अपने साथ लेकर संगीत का दल, थियेटर की पार्टी, व्यायामशाला में कुश्ती, और भी न जाने क्या-क्या करते थे। उनके शरीर में इतनी शक्ति थी कि उसे मानो रखने का स्थान ही नहीं पाते थे। पुराने कल-कब्जा आदि खरीद कर उन्होंने गाड़ी बनायी। उन दिनों कलकत्ते में गैस की बत्ती जलती थी। नरेन्द्रनाथ साथियों का सहयोग लेकर गैस तैयार करने के काम में लग गये। गुल्ली डंडा, दौड़ धूप, मारपीट, घुस्सेबाजी, मुक्केबाजी, लाठी का खेल, उछल कूद, तैराकी आदि हर विषय में वह प्रथम स्थान अधिकार कर लेते थे। वह सब कामों में दलपति थे।

उनके बचपन की उद्दण्डता और असीम साहस की अनेक घटनायें हैं। वे रोज की घटनायें थीं। इसी कारण जब वह अमेरिका से विश्वविजयी

होकर लौट आये, तब परिहास करते हुए शिष्यों से प्रायः कहा करते थे—"बचपन में मैं बहुत उद्दण्ड था। अगर ऐसा न होता तो क्या इसी तरह सारी दुनिया मैं घूम आ सकता था?"

उनके भीतर जो विराट पुरुष निवास करते थे, उन्हीं की सक्रिय शक्ति के प्रभाव से नरेन्द्रनाथ बालकपन से ही महान् तेजस्वी थे और उस शक्ति का आत्मप्रकाश अनेक रूपों में प्रकट होता था। केवल ब्रह्मलोक के ऋषि ही नहीं, बुद्ध, शंकर, नेपोलियन, वाल्मीकि, व्यास आदि के महान् आत्मा मानो नरेन्द्रनाथ के भीतर आविर्भूत हुए थे। इस कारण उनके भीतर विपुल आध्यात्मिक शक्ति, दया, परदुःखकातरता, साम्य, मैत्री, स्वाधीनता, आत्मविश्वास, तेज, वीर्य, स्थैर्य, धैर्य, शारीरिक और मानसिक बल, इहलौकिक तथा पारलौकिक ज्ञान, सबसे ऊपर अप्रतिद्वन्द्वी नेतृत्व का भाव विकसित हुए थे। धर्म, समाज और राष्ट्र के परवर्ती काल में उन्होंने जिस विश्वप्लावी आलोड़न की सृष्टि की थी उसको मुकुलित होते उनके बाल्यजीवन में ही दिखाई पड़ा था। बचपन की छोटी-बड़ी सैकड़ों घटनाओं तथा कार्यों की समष्टिरूप थे भावी विवेकानन्द। बचपन से ही गरीब-दुःखियों को देखते ही उनका हृदय द्रवित हो जाता था और कुछ देने लायक न मिलने पर अपनी धोती खोलकर ही भिखारी को दे देते थे। इससे वह परम सन्तोष प्राप्त करते थे,* उनके दुःख का वह अपने चित्त में अनुभव करते थे, उनके दूःख दूर करने की चेष्टा उनके मन में सक्रिय होने लगती थी। दरिद्रों का कल्याण साधन ही उनके जीवन का श्रेष्ठ व्रत रहा। उनके-जीवन व्रत का सुस्पष्ट आभास मिलता है—अमेरिका से लिखित उनके एक पत्र से जो इस प्रकार है "...—एक ओर भारत की और

---

*स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका से एक पत्र में लिखा था—"... नहीं, मैं तत्त्वजिज्ञासु नहीं, दार्शनिक भी नहीं! नहीं, नहीं, मैं साधु भी नहीं हूँ। मैं गरीब हूँ, मैं गरीबों से प्यार करता हूँ।" सारे विश्व के गरीबों के लिए उन्होंने आँसू बहाये थे।

दूसरी ओर विश्व के भविष्य धर्म सम्बन्धी मेरी योजना है। जो उपेक्षित लाखों नर-नारियाँ दिन-दिन दुःख के अन्धकार गह्वर में डूबती जा रही हैं, जिन्हें सहायता देने वाला कोई नहीं है अथवा जिनके विषय में सोचने का भी किसी को अवकाश नहीं है, जो लोग दीन-हीन तथा उत्पीड़ित हैं, उनके द्वारों पर सुख स्वास्थ्य, नीति, धर्म और शिक्षा ढोते हुए ले चलना होगा। यही मेरी आकांक्षा एवं ध्येय है। इसे मैं संपूर्ण करूँगा या मृत्यु को अपनाऊँगा।" विश्व-कल्याण के वेदी-मूल में भारत के दरिद्रों के उद्धार के लिए उनका जीवन कृष्णार्पित हुआ था।

परीक्षा का पाठ उनके लिए कुछ भी नहीं—बहुत तुच्छ बात थी। वह परीक्षा के एक-दो मास पहले पाठ्य-पुस्तक हाथ में ले लेते और हर वार सफलता के साथ परीक्षा में उत्तीर्ण होते थे। पाठ्य-पुस्तक की छोटी सीमा के भीतर उनकी ज्ञान-स्पृहा तृप्त नहीं होती थी। प्रवेशिका की परीक्षा के पूर्व उन्होंने केवल भारत का इतिहास ही नहीं, प्रसिद्ध लेखकों के साहित्य आदि अनेक पुस्तकों को पढ़कर अपने ज्ञान-भण्डार को समृद्ध कर लिया था।

उनका शरीर बहुत बलिष्ठ था। वयस बढ़ने के साथ-साथ वह एक ओर तो सुदक्ष अश्वारोही, तैराक, सुनिपुण व्यायामवीर थे, दूसरी ओर विविध शास्त्र, दर्शन तथा कलाविद्या में सुपण्डित, सुगायक, विविध वाद्य-यन्त्रों के उत्तम वादक, नृत्यगीत में कुशली, हास-परिहासप्रिय, फिर गम्भीर, अध्ययनशील, ध्यानपरायण तथा सर्वजनप्रिय हो गये।

मेट्रोपलिटन में पढ़ते समय विद्यालय के एक अनुष्ठान में उनके भीतर के "वक्ता विवेकानन्द" ने आत्म-प्रकाश किया था। स्कूल के पुरस्कार वितरण तथा एक प्रवीण शिक्षक के विदा अभिनन्दन की सभा थी। सभापति थे सुवक्ता सुरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय। उनके सामने खड़े होकर भाषण देने का साहस किसी में न हुआ। सब लोगों के विशेष आग्रह से नरेन्द्रनाथ कुछ कहने के लिए उठ खड़े हुए। विशुद्ध अंग्रेजी में लगभग आधे घण्टे

तक बहुत सुन्दर और प्रभावशाली भाषण देकर जब वह बैठे तो चारों ओर से उच्च प्रशंसाध्वनि उठने लगी। सभापति ने केवल उनके भाषण की प्रशंसा ही नहीं की, वल्कि वक्ता के उज्ज्वल भविष्य के सम्बन्ध में स्पष्ट संकेत भी किया था।

दो

प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण होने के अनन्तर नरेन्द्रनाथ पहले प्रेसीडेन्सी कालेज में भरती हुए किन्तु दूसरे साल जेनरल असेम्वली इन्स्टीट्यूशन में चले गये। साथ ही उनके सामने मानो एक महान् लोक का द्वार खुल गया। उनके विचार-जगत् में विपुल आन्दोलन उत्पन्न हुआ। उनकी दृष्टि भी भारत की सीमा-रेखा का अतिक्रमण कर विश्व की ओर प्रसारित हुई। नये-नये विचारों, नयी-नयी समस्याओं ने उनके अन्तःकरण पर प्रभाव डाल दिया। वह विश्लेषक की दृष्टि लेकर ध्यान से दर्शन शास्त्र और साहित्य पढ़ने लगे। मिल आदि पाश्चात्य तार्किकों तथा ह्यूम, हर्बर्ट स्पेन्सर आदि दार्शनिकों के विचारों से परिचित हुए। वर्डस वर्थ के काव्य ने उनके हृदय पर गहरा प्रभाव डाल दिया। डेकार्ट के अहंवाद, ह्यम और वेन के नास्तिक्यवाद, डारविन के अभिव्यक्तिवाद तथा स्पेन्सर के अज्ञेयवाद ने नरेन्द्रनाथ के चित्त में विप्लव ला दिया था। यहाँ तक कि प्राचीन आरिस्टटल के मत की भी उन्होंने उपेक्षा नहीं की।

पाश्चात्य दर्शन और विचार के द्वारा यद्यपि वह विशेषरूप से प्रभावित हुए थे, किन्तु प्राच्य और प्रतीच्य दर्शनों का तुलना-मूलक भाव से अध्ययन करके उन्होंने वाद में कहा था—"हिन्दू दर्शन प्रागैतिहासिक युग से परम सत्य की उपलब्धि करके जिस स्थिर सिद्धांत पर पहुँचे हैं, पाश्चात्य दार्शनिक लोग उस सत्य का थोड़ा क्षीण आभासमात्र पा सके हैं—पूर्ण सत्य की उपलब्धि वे नहीं कर सके ?"

शेली की कविता और हेगल के दर्शन ने उनके मनोराज्य पर विशेष

प्रभाव डाला था। उनके मन में ऐसा प्रश्न भी विशेषरूप से उठा था कि इस दृश्यमान जगत् की सुनियन्त्रित परिचालना के पीछे ऐसी कोई विशाल शक्ति है या नहीं, जिसके इशारे से जड़चेतनात्मक यह ब्रह्माण्ड चल रहा है। सबसे ऊपर मनुष्य-जीवन का उद्देश्य क्या है—ऐसी जिज्ञासा ने भी उनके चित्त पर अधिकार कर लिया था। संसार में इतने दुःख और इतनी विषमतायें क्यों ह? धनिक के महल के पास ही गरीब की झोपड़ी क्यों है? व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय विषमताओं ने उनके मन को विद्रोही बना दिया था।

❀ ❀ ❀ ❀

(बचपन से ही नरेन्द्रनाथ का अन्तर धर्मभाव से पूर्ण था और उसी की तीव्र प्रेरणा से तरुण अवस्था में ही वह अखण्ड ब्रह्मचर्य के पालन करने में सन्नद्ध और एकान्त में बैठकर ध्यान तथा कठोर तप करने में निरत रहते थे। निरामिष भोजन तथा भूमि-शयन या कम्बल की शय्या में ही वह विश्राम करते थे। कभी रात-पर-रात जगकर गम्भीर ध्यान करते हुए ही बिता देते थे। उस धर्मलाभ की इच्छा से ही वह उन दिनों ब्राह्म समाज में आने-जाने लगे तथा उस समाज की प्रार्थना आदि में सम्मिलित होकर बहुत आनन्द पाते थे। सुकण्ठ सुगायक नरेन्द्रनाथ ब्राह्मसमाज की रविवार की उपासना के समय मधुर ब्रह्मसंगीत गाकर सबको विमल आनन्द देते थे। थोड़े ही दिनों में वह केशवचन्द्र सेन आदि ब्राह्म नेताओं के बहुत प्रिय हुए तथा उस समाज के सभ्य होकर उन्होंने निराकार सगुण ब्रह्म की उपासना में मन लगाया। फिर ब्राह्मों के अनुकरण पर वह खुल्लम-खुल्ला हिन्दू-धर्म की निन्दा करने लगे। जातिभेद की समालोचना, स्त्री-शिक्षा और स्त्री-स्वाधीनता की आवश्यकता के विषय में वह बहुत जोरों से प्रचार करने लगे।)

अलौकिक-शक्ति-सम्पन्न नरेन्द्रनाथ के जीवन में बचपन से ही अनेक अतीन्द्रिय तत्त्वों की अनुभूति हुई थी। रात को बिछौने में लेटे-लेटे निद्रा के लिए आँख मूँदते ही वह भ्रूमध्य में एक ज्योति-पिण्ड देखते थे। वह ज्योति विविध वर्णों में फैलकर क्रमशः उनके सारे शरीर को आवृत कर

लेती थी। वह अपने को उस अखण्ड ज्योतिः-समुद्र में निमग्न समझकर सो जाते थे।

किशोर अवस्था में आने पर उन्हें एक अपूर्व अनुभूति होती थी। उन्होंने वाद में कहा था—"यौवन में पदार्पण करने के वाद प्रत्येक रात को शयन करते ही दो प्रकार की कल्पनायें मेरे मन में जाग उठती थीं। एक में मैं देखता था, मानो मुझे अनेक धन-जन-सम्पद ऐश्वर्य प्राप्त हुए हैं। संसार में जिन्हें वड़ा आदमी कहते हैं, मानों उनके शीर्ष स्थान में मैं अधि-रूढ़ हुआ हूँ। ऐसा लगता था कि वैसा होने की शक्ति सचमुच ही मुझमें है। फिर दूसरे ही क्षण मैं देखने लगता था कि मानो धरती का सर्वस्व छोड़कर केवलमात्र ईश्वरेच्छा के ऊपर निर्भर करके कौपीन धारणपूर्वक स्वेच्छा से भोजन और वृक्ष के नीचे रात्रि-यापन कर रहा हूँ और ऐसा भी अनुभव होता था कि मैं चाहूँ तो उस ढंग से मुनि-ऋषियों की तरह जीवन-यापन कर सकता हूँ। उस प्रकार से द्विविध जीवन-चित्र कल्पना में उदित होकर अन्त में अन्तिम विचार ही हृदय पर अधिकार जमाये बैठता था। मैं सोचता था कि परमानन्द लाभ इसी मार्ग का अवलम्वन करने से ही हो सकेगा। उस समय उस भूमानन्द का विषय सोचते हुए मन ईश्वर-चिन्ता में मग्न हो जाता और मैं सो जाता था। आश्चर्य की वात है कि वहुत दिनों तक रोज ही ऐसा होता था।"

धर्म का मूल उद्देश्य है "ईश्वर-प्राप्ति"। वह क्रमशः भूमा व्रह्म की खोज में व्याकुल हो पड़े। हृदय की उस व्याकुलता को लेकर नरेन्द्रनाथ कलकत्ते के विभिन्न धार्मिक व्यक्तियों के पास जाने लगे। अन्त में एक दिन वह महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पास पहुँचे। उपासना एवं ध्यान-भजन की सुविधा के लिए उन दिनों महर्षि कलकत्ते के पास गंगा में नौका पर रहते थे। नरेन्द्रनाथ ने उन्मत्त की तरह उस नाव में घुसकर महर्षि से पूछा—"महाशय क्या आपने ईश्वर का दर्शन किया है?"

उस समय सम्भवतः महर्षि इस प्रकार के प्रश्न के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने उस युवक की ओर कुछ क्षणों तक देखते रहकर कहा—

"तुम्हारे नेत्र योगी के नयनों की तरह हैं।" अनेक आशा लेकर नरेन्द्रनाथ महर्षि के समीप गये थे। कुछ भी न पाकर वह हताश हृदय लेकर लौट आये। उनके अन्तर की अशान्ति और भी बढ़ गयी। वैसे तत्त्वदर्शी महापुरुष कहाँ मिलेंगे जो भूमानन्द लाभ का पथ दिखा दे सकें।

ब्राह्मसमाज की प्रणाली-वद्ध उपासना से उनका चित्त तृप्त नहीं होता था—सभी मानो वनावटी है, परन्तु वे गम्भीर भाव में डूबना चाहते थे। क्रमशः उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो ब्राह्मसमाज एक समाज-संस्कारक प्रतिष्ठान मात्र है। वह जिस सत्य वस्तु की उपलब्धि करना चाहते थे, जिस अवस्था में स्थित होने की चेष्टा कर रहे थे, उसे ब्राह्मसमाज में नहीं पाया। वह अध्ययन करते चल रहे थे, रातभर ध्यान करते जा रहे थे, परन्तु उनका अन्तर एक अव्यक्त वेदना से भरा हुआ रहता था। अन्तर का आवेग और अभावबोध उन्हें अशान्त कर रहे थे। वह कहाँ जायँ, सच्चिदानन्द-स्वरूप ब्रह्म की उपलब्धि के मार्ग का अनुसन्धान कौन बता देगा ?

ठीक उसी समय घटनाक्रम तथा दैव इच्छा से श्रीरामकृष्णदेव के साथ उनका मिलन हुआ। नरेन्द्रनाथ ने केशवचन्द्र सेन के भाषण तथा उपासना आदि से श्रीरामकृष्णदेव का नाम सुना था। केशवचन्द्र के द्वारा परिचालित पत्र-पत्रिकाओं में उनकी बात तथा उपदेश के विषय में भी पढ़ा था। ठीक उसी समय वह उस मिलन के लिए कहाँ तक तैयार थे, उसे हम नहीं जानते, किन्तु श्रीरामकृष्ण देव और नरेन्द्रनाथ का यह मिलन मानो प्राच्य और प्रतीच्य का मिलन, प्राचीन के साथ नवीन का मिलन, समुद्र के साथ नदी का संगम, स्वर्ग के साथ मर्त्य का तथा विश्व के साथ भारत का मिलन था। उसे हम आगे देख सकेंगे।

नरेन्द्रनाथ का अभी १८वाँ वर्ष शुरू हुआ। एफ० ए० परीक्षा के लिए वह तैयारी कर रहे थे। उन्होंने प्राच्य और पाश्चात्य दर्शनों की तुलना-मूलक आलोचना की, वह सन्देहवाद तथा नास्तिक्यवाद के साथ परिचित हुए। सगुण ब्रह्म की उपासना करने लगे थे, मूर्तिपूजा पर विश्वास नहीं

था। यद्यपि धनी के घर में लालित-पालित हुए, देखने-सुनने, पढ़ने-लिखने, गाने-वजाने, वोलने-कहने में अद्वितीय थे, किन्तु गरीव-दु:खियों के लिए उनका हृदय रोता था। दयामय भगवान के राज्य में इतने दु:ख क्यों ? इस प्रश्न का कोई समाधान उन्हें नहीं मिलता था। संसार में इतनी विषमता, धनी और दरिद्र में पर्वततुल्य भेद को किसने वनाया ? एक ही भगवान के सन्तान सभी हैं तथापि ब्राह्मण और चण्डाल के भीतर ऐसे दुर्लंघ्य अन्तराल की सृष्टि कैसे हुई ?—और भी सैकड़ों चिन्तायें उनके तरुण चित्त को व्याकुल किया करती थीं। इधर ओस से धोये ताजा फूल की तरह पवित्र था उनका जीवन। कमल-दल-तुल्य थे उनके दोनों नेत्र। वह ज्ञानी, गुणी, आत्मविश्वासी तथा युक्ति-पन्थी थे।

इस प्रकार के नरेन्द्रनाथ के साथ अनपढ़ एक दरिद्र पुजारी ब्राह्मण रामकृष्ण का मिलन हुआ। रामकृष्ण दक्षिश्णेवर में भवतारिणी कालीमाता की पूजा करते थे। भगवान के अतिरिक्त उनकी और कोई कामना नहीं थी और किसी सांसारिक विषय को जानते भी नहीं थे। वह भाषण नहीं देते, प्रचार नहीं करते और न कोई पुस्तक ही लिखते थे। दुर्गम हिमालय की गुफा में तपस्या करने के लिए नहीं गये थे। जनतापूर्ण कलकत्ता शहर के निकट दक्षिणेश्वर के काली मंदिर में ही लगभग ३० वर्षों तक रहे थे। केशवचन्द्र, विजयकृष्ण, शिवनाथ शास्त्री आदि ब्राह्मसमाज के नेता इस निरक्षर, रहस्यमय पुरुष के चरणों के नीचे घण्टों अवाक् विस्मय से वैठे रहते थे। उनके श्रीमुख का ईश्वरीय प्रसंग मन्त्रमुग्ध की तरह सुनते थे। उनकी भाव-समाधि देखकर आश्चर्यचकित होते थे, शास्त्रादि विना पढ़े ऐसे सुन्दर आध्यात्मिक तत्त्व की वात, जो वे लोग भी नहीं जानते थे, कैसे कहते हैं। देखने में उन्माद की तरह, पहनने की धोती को सम्हालना भी मुश्किल था, किन्तु जब माता का गान करते तब श्रोताओं के हृदय भीतर से मरोड़ने लगते—मानो तीर-सा चुभ जाता।

उनके ईश्वर, कालीमाता थी। उनके ब्रह्म भी कालीमाता रहीं। छोटे वच्चे की तरह सदा माँ-माँ कहते, माँ का गुणगान करते, माँ की वात कहते

थे। उनके लिए कालीमाता पत्थर की मूर्ति नहीं थी। वह मूर्ति की पूजा नहीं करते थे, वह पूजा करते थे—चिन्मयी, त्रिगुणमयी, जगज्जननी, सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारिणी, वराभयदायिनी महामाया की। माँ उनके साथ बातें करतीं, उनके हाथ से खातीं, फिर न जाने कितने ही उपदेश देती थीं। वह उसी माँ की चिन्ता में तथा माँ काली को लेकर ही दिन-रात सर्वक्षण विभोर रहते थे।

नरेन्द्रनाथ के दक्षिणेश्वर आने से पहले ही श्रीरामकृष्ण देव को एक अलौकिक दर्शन हुआ था। उससे ही वह नरेन्द्रनाथ के स्वरूप के सम्बन्ध में जान सके थे। उन्होंने बाद में कहा था—"एकदिन देखा, मन समाधि-मार्ग से ज्योतिर्मय पथ पर ऊपर की ओर उठता चला जा रहा है। सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र-मण्डित स्थूल जगत का अनायास अतिक्रमण कर मन पहले सूक्ष्म भाव-जगत में प्रविष्ट हुआ।...अनेक देव-देवियों की भावघन विचित्र मूर्तियाँ पथ के दोनों ओर अवस्थित देखीं।...क्रमशः मन, अखण्ड के राज्य में प्रवेश कर गया। सप्त प्रवीण ऋषि वहाँ समाधिस्थ बैठे थे। ज्ञान और पुण्य में, त्याग और प्रेम में ये लोग मनुष्य तो दूर की बात है, देव-देवियों तक का अतिक्रमण किये हुए थे। विस्मित होकर मैंने देखा—सामने अव-स्थित अखण्ड घर के भेद-रहित समरस ज्योतिमण्डल का एकांश घनीभूत होकर अलौकिक शिशु के रूप में परिणत हो गया। वह अनुपम देव-शिशु असीम आनन्द प्रकट करते हुए एक ऋषि से कहने लगा—"मैं जाता हूँ, तुम्हें भी मेरे साथ चलना होगा।"...नरेन्द्र को देखते ही मैं समझ गया कि यह वही ऋषि है।"*

---

*श्रीरामकृष्ण देव ने ही स्वयं उस देवशिशु का रूप धारण कर ब्रह्म-लोक के एक ऋषि के गले में बाँह डालकर उन्हें अपने साथ लीला-सह-चर के रूप में नर-देह में अवतरण का अनुरोध किया था। यही युगल आत्मा प्रतियुग में नारायण और नर ऋषि के अवतार रूप से संसार में अवतीर्ण होकर धर्म-संस्थापन किया करते हैं।

कलकत्ते के सिमुलिया मोहल्ले के सुरेन्द्रनाथमित्र ने १८८१ ई० के नवम्बर मास के एकदिन अपने भवन में श्रीरामकृष्ण तथा उनके भक्तों को आदर के साथ आमन्त्रित करके एक छोटे से उत्सव का आयोजन किया। सुकण्ठ गायक का प्रयोजन होने से, सुरेन्द्रनाथ पड़ोसी विश्वनाथ दत्त के पुत्र नरेन्द्रनाथ को भजन गाने के लिए ले आये। गायक को देखते ही श्रीरामकृष्ण देव चौंक उठे—यही तो वह ब्रह्मलोक का ऋषि है। .... उनके उस अतीन्द्रिय दर्शन ने वता दिया—उस अपरिचित युवक का परिचय। वह विह्वल हो गये—वह तो इसी की प्रतीक्षा में अवतक वैठे थे।

नरेन्द्रनाथ प्रेम में विभोर होकर गाने लगे। गाना सुनकर श्रीरामकृष्ण देव को भावसमाधि हो गई।...भजन आदि के समाप्त होने पर श्रीठाकुर ने नरेन्द्रनाथ के पास आकर उनके अंग-प्रत्यगों को अच्छी तरह जाँचते हुए उनसे दो-एक वातें की और अन्त में प्रार्थना के स्वर में उन्हें एक दिन दक्षिणेश्वर आने का आमंत्रण दिया। शिष्टता के खातिर नरेन्द्रनाथ ने भी जाने का वचन दिया।...

उक्त घटना के कुछ सप्ताह वाद ही नरेन्द्रनाथ की एफ० ए० परीक्षा समाप्त हो गयी। साथ ही साथ उन्हें एक अग्नि-परीक्षा का सामना करना पड़ा। पिता ने एक धनी व्यक्ति की कन्या के साथ उनका विवाह निश्चित किया। कन्या कुछ साँवली थी, इस कारण १० हजार रुपये दहेज तै हुआ। प्रस्ताव सुनकर नरेन्द्रनाथ एकदम विद्रोही हो गये।...उनका एक ही उत्तर था—"मैं किसी तरह भी विवाह नहीं करूँगा।" नरेन्द्रनाथ के वैराग्य-प्रवण मन में तीव्र प्रतिक्रिया होने लगी। वह और भी अधिक ध्यान-भजन में डूव गये। ब्राह्मसमाज में गमनागमन और भी बढ़ा दिया।

श्रीरामकृष्ण के भक्त डा० रामचन्द्र दत्त नरेन्द्रनाथ के आत्मीय तथा उन्हीं के घर में प्रतिपालित हुए थे। धर्म-भाव की प्रेरणा से नरेन्द्रनाथ के हृदय में वैराग्य का उदय हुआ है, जानकर उन्होंने एकदिन नरेन्द्रनाथ से कहा, "भाई, यदि यथार्थ धर्मलाभ करना ही तुम्हारे जीवन का उद्देश्य है,

तो ब्राह्मसमाज आदि स्थानों में न घूमकर दक्षिणेश्वर में परमहंस श्रीराम-कृष्ण देव के पास जाओ।"

उनकी बात नरेन्द्रनाथ को अच्छी लगी। पड़ोसी सुरेन्द्रनाथ ने उन्हें एकदिन अपनी गाड़ी से दक्षिणेश्वर ले जाने का निमन्त्रण किया। दो-तीन मित्रों के साथ नरेन्द्रनाथ सुरेन्द्रनाथ की गाड़ी से दक्षिणेश्वर पहुँचे।

तीन

१८८१ ई० का दिसम्बर मास। गंगा जी की ओर के दरवाजे से नरेन्द्रनाथ साथियों के साथ श्रीरामकृष्ण देव के कमरे में प्रविष्ट हुए। देखते ही प्रसन्न होकर श्रीठाकुर ने फर्श पर जो चटाई बिछी हुई थी, उस पर नरेन्द्रनाथ को बैठने के लिए कहा। बाद में गाना गाने का अनुरोध करने पर नरेन्द्रनाथ ने कहा कि बंगला गाना केवल दो-ही चार जानते हैं। उसी को गाने के लिए कहा गया। उन्होंने सारे हृदय-मन से दो संगीत गाये—'मन चलो निज निकेतने। संसार विदेशे विदेशीर वेशे भ्रम केन, अकारणे (हे मन, तुम अपने निकेतन चलो, संसार रूपी विदेश में विदेशी के वेश में बिना कारण क्यों घूम रहे हो) इत्यादि। और 'जाबे कि हे दिन आमार विफले चलिये। आछि नाथ, दिवा-निशि तव आशापथ निरखिये (क्या मेरे दिन वृथा ही चले जायँगे ? हे नाथ, मैं दिन-रात तुम्हारे आने का रास्ता देख रहा हूँ) इत्यादि। मधुर सुर की झंकार से घर भर गया। श्रीरामकृष्ण अपने को नहीं सम्हाल सके। अहा अहा ! कहते-कहते समाधि-मग्न हो गये।

उसके अनन्तर एक अचिन्तनीय घटना हो गई। नरेन्द्रनाथ के सब विचार उलट-पलट गये। एकाएक श्रीठाकुर नरेन्द्रनाथ का हाथ पकड़कर उन्हें उत्तर की ओर चटाई से घिरे हुए बरामदे में ले गये तथा आनन्दाश्रु बहाते हुए कहने लगे—"इतने दिनों के बाद आये ? मैं तुम्हारे लिए व्याकुल प्रतीक्षा में बैठा हूँ—उसे एक बार तुमने सोचा भी नहीं ?"... दूसरे ही क्षण रोते हुए हाथ जोड़कर बोले—"मैं जानता हूँ प्रभु, तुम वही

सनातन ऋषि, नर रूपी नारायण हो, जीवों का दुःख दूर करने के लिए पुनः शरीर धारण किये हुए हो।"

श्रीठाकुर के उस प्रकार के अद्‌भुत व्यवहार से उनके मन में कैसी प्रतिक्रिया हुई थी, उसे बहुत दिनों के बाद नरेन्द्रनाथ ने कहा था—"मैं तो वैसे व्यवहार से एकदम निर्वाक् और स्तंभित हो गया। मन में सोचने लगा कि किसे देखने आया हूँ। यह तो एकदम उन्माद है, नहीं तो मैं विश्वनाथ दत्त का पुत्र हूँ। मुझसे ऐसी बात कहते हैं? जो हो, मैं चुप ही रहा...दूसरे ही क्षण मुझे खड़े रहने कहकर वह घर में से कुछ मक्खन, मिश्री और सन्देश लाकर अपने ही हाथ से मुझे खिलाने लगे। मैं बार-बार कहने लगा कि यह मिठाई मुझे दीजिये। म अपने साथियों के साथ बाँटकर खाऊँगा। उन्होंने एक न सुना, बल्कि कहा—"वे लोग बाद में खायेंगे। तुम खाओ।" इतना कहकर सब मुझे ही खिलाकर शान्त हुए। उसके बाद मेरा हाथ पकड़ कर बोले—"बोलो, तुम शीघ्र ही एकदिन अकेले यहाँ आओगे।" उनका साग्रह अनुरोध टाल न सकने के कारण लाचार होकर मुझे "आऊँगा" कहना पड़ा। उसके बाद उनके साथ कमरे में आकर मैं साथियों के साथ बैठ गया।"

परन्तु कमरे में आते ही श्रीठाकुर मानों दूसरे ही मनुष्य बन गये। बातचीत में जरा भी असामंजस्य नहीं था। अनेक प्रकार के ईश्वरीय प्रसङ्ग कहते चले, उनको भाव-समाधि हुई। नरेन्द्रनाथ विस्मय-विमुग्ध चित्त से उस रहस्यमय व्यक्ति को देखते रहे। उनकी बात मुग्ध होकर सोचने लगे—ये जो कुछ कहते ह पुस्तक से रटी हुई बात तो नहीं मालूम होती!

भगवान् को देखा जा सकता है या नहीं उस प्रसङ्ग में श्रीठाकुर ने आशा की वाणी सुनाकर कहा—"हाँ जी, उन्हें देखा जा सकता है, जैसे तुम्हें देख रहा हूँ, तुम्हारे साथ बातें कर रहा हूँ ठीक वैसे ही, बल्कि और भी निकटतम भाव से ईश्वर को देखा जा सकता है, उनसे बातें की जा सकती हैं, परन्तु वैसा करना चाहता है कौन?...लोग पत्नी-पुत्रों के शोक में घड़ों आँसू बहाते हैं, विषय और रुपये-पैसे के लिए रोते हैं, परन्तु

भगवान् की प्राप्ति नहीं हुई, ऐसा कहकर कौन रोता है, कहो तो ? उनका दर्शन नहीं मिला, ऐसा कहकर यदि कोई रोते हुए उन्हें पुकारे, तो वे अवश्य दर्शन देते हैं।"

श्रीरामकृष्ण देव की बातों ने नरेन्द्रनाथ के अन्तःकरण में प्रभाव डाल दिया। वह केवल चुपचाप सोचन लगे...'उन्माद होने पर भी ईश्वर के लिए ऐसा त्याग संसार में बहुत अल्प मनुष्य ही कर सके हैं। उन्माद होने पर भी यह महान् पवित्र तथा महान् त्यागी हैं। इन्होंने ईश्वर का दर्शन किया है, अतः मनुष्य के हृदय की श्रद्धा, पूजा और सम्मान पाने के योग्य हैं।'

श्रीरामकृष्ण देव के सम्बन्ध में इसी प्रकार सोचते हुए नरेन्द्रनाथ उस दिन कलकत्ते लौट आये। किन्तु श्रीरामकृष्ण देव की बातचीत तथा अद्भुत् व्यवहार ने उनके मन में बड़ी भारी आँधी उत्पन्न कर दी। जितना ही सोचने लगे उतना ही उस अर्द्धोन्माद व्यक्ति का जीवन विस्मय-जनक तथा रहस्य-पूर्ण प्रतीत होने लगा। उनकी बातों को एकदम प्रलाप कहकर उड़ा भी नहीं दिया जा सकता। उस दिन से नरेन्द्रनाथ का बलिष्ठ मन गम्भीर विचार द्वारा श्रीठाकुर के जीवन-रहस्य का उद्घाटन करने के लिए नियुक्त हुआ।...

इधर नरेन्द्रनाथ के चले जाने के बाद ही श्रीठाकुर का चित्त फिर से उन्हें देखने के लिए विशेषरूप से व्याकुल होने लगा। प्रायः उन्हें ऐसा प्रतीत होता कि अँगोछा निचोड़ने की तरह उनके हृदय को कोई जोर से मरोड़ रहा है। अपने को सम्हाल न सकने के कारण वह व्याकुल होकर रोने लगते—'अरे तू आ जा ! तुझे बिना देखे मैं रह नहीं सकता।'

❀ ❀ ❀ ❀

घर आकर नरेन्द्रनाथ पढ़ाई में मन लगाने की चेष्टा करने लगे, किन्तु रामकृष्णदेव को वह भूल न सके।...दिनरात सभी समय श्रीरामकृष्ण की चिन्ताओं ने उन्हें व्याकुल कर डाला। एक अनिर्वचनीय दुर्वार आकर्षण ने उनके दृढ़ मन को भी अभिभूत कर लिया। अनेक चिन्ताओं से विक्षिप्त

होकर लगभग एक मास के अनन्तर नरेन्द्रनाथ एकदिन अकेले दक्षिणेश्वर चले गये। श्रीरामकृष्ण मानों उनके आने का सुसमाचार पहले ही जान गये थे। इसी कारण वह उनकी प्रतीक्षा में अकेले ही अपने कमरे के छोटे तख्ते पर बैठे हुए थे।

नरेन्द्रनाथ को देखकर आनन्द से अधीर हो 'तू आ गया' कहते हुए उनका हाथ पकड़कर उन्होंने उन्हें तख्ते पर बिठा लिया, तथा स्नेहपूर्ण नेत्रों से नरेन्द्रनाथ को देखने लगे। सहसा श्रीठाकुर के भीतर अद्‌भुत् भावान्तर हुआ। वह अभिभूत की तरह अस्पष्ट स्वर से अपने मन में कुछ कहते हुए धीरे-धीरे नरेन्द्र की ओर सरक आये। उसके बाद की घटना का वर्णन नरेन्द्रनाथ ने स्वयम् ही इस प्रकार किया है—"मैंने सोचा, शायद पागल पहले दिन की तरह फिर कोई पागलपन कर बैठेगा। उस प्रकार चिन्ता के साथ ही साथ उन्होंने एकाएक मेरे पास आकर दाहिने पैर से मुझे छू दिया। उस स्पर्श से क्षण भर में मेरे अन्त:करण में एक अपूर्व अनुभूति हुई। आँखों से मैं देख रहा था, परन्तु मालूम होने लगा मानो दीवार सहित सारी चीजें तेजी से घूमते हुए कहीं लीन होती जा रही हैं और सारे विश्व के साथ मेरा अहंभाव भी एक सर्वग्रासी महाशून्य में एकाकार होने के लिए दौड़ता चला जा रहा है। भीषण आतंक से मैं अभिभूत हो गया। ऐसा लगा मानो अहंभाव का नाश ही तो मृत्यु है। वह मृत्यु मेरे सामने अति निकट है। अपने को सम्हाल न सकने से मैं चिल्ला उठा—अजी, तुमने मेरी यह कैसी दशा कर डाली, मेरे तो माँ-बाप हैं।"

"अद्‌भुत् पागल मेरी उस बात को सुनकर खिलखिलाता हुआ हँस पड़ा और हाथ से मेरे वक्षस्थल का स्पर्श करता हुआ बोला—'तो अब यहीं तक रहे। एक बार में नहीं होगा। कल फिर होगा*।' आश्चर्य का विषय

---

* नरेन्द्रनाथ जिस ब्रह्मोपलब्धि में प्रतिष्ठित होना चाहते थे वही ब्रह्म-ज्ञान श्रीरामकृष्ण ने उस दिन नरेन्द्रनाथ को देना चाहा था। बाद में

है कि उनके स्पर्श करके वह बात कहते ही मेरी वह अपूर्व अनुभूति एकदम लुप्त हो गयी। मैं प्रकृतिस्थ हो गया और घर के भीतर तथा बाहर की सभी चीजों को पहले की तरह अवस्थित देखने लगा।"

क्षणभर में यह घटना हो गयी। क्या यह सम्मोहिनी विद्या है या इन्द्रजाल—ब्लैक मैजिक ? परन्तु उन्होंने दृढ़ संकल्प किया कि इनके हाथ की मैं पुतली फिर नहीं हूँगा।...फिर ऐसा भी सोचा कि जो मनुष्य पल-भर में मेरे जैसे दृढ़ इच्छाशक्ति-सम्पन्न मन को कीचड़ के लोंदे की तरह तोड़ताड़ सकते हैं, वह तो साधारण व्यक्ति नहीं हैं! वह हैं असाधारण शक्तिसम्पन्न महापुरुष! उनके आत्मविश्वास तथा चित्त की दृढ़ता के ऊपर एक प्रचण्ड आघात पड़ा।

श्रीठाकुर उस घटना के अनन्तर मानो दूसरे ही मनुष्य बन गये। वह नरेन्द्रनाथ को खिलाने-पिलाने और प्यार जताने में व्यस्त हो पड़े। कितने हीं प्रकार से वह स्नेह प्रकट करते रहे, पर उन्हें तृप्ति नहीं होती थी। इधर सन्ध्या हो आयी। नरेन्द्रनाथ विदा लेने गये। उस दिन की तरह श्रीठाकुर आग्रह करने लगे—"बोलो फिर शीघ्र आओगे ?" लाचार होकर वचन देते हुए वह कलकत्ते लौट आये।

परन्तु नरेन्द्रनाथ अपने मनको उस घटना के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त नहीं कर सके। दृढ़ संकल्प लेकर इस रहस्य का भेद जानने के लिए वह सन्नद्ध हो गये। उस अद्भुत् पुरुषप्रवर की बात जितना ही सोचने लगे, उतना ही सब कुछ दिवा-स्वप्न सा मालूम होने लगा। इसी प्रकार चिन्ता-कुल चित्त से प्रायः एक सप्ताह के अनन्तर वह पुनः दक्षिणेश्वर आ उप-स्थित हुए। उस दिन श्रीठाकुर उन्हें साथ लेकर पासवाले यदुमल्लिक के बगीचे में टहलने गये। इधर-उधर थोड़ी देर घूमकर दोनों बगीचे की

उन्होंने समझा कि अभी समय नहीं हुआ है। वह निर्विकल्प ब्रह्मज्ञान उन्होंने नरेन्द्रनाथ को कुछ साल बाद काशीपुर के बगीचे में दिया था। वह घटना हम आगे देखेंगे।

बैठकखाने में आ बैठे। देखते-देखते श्रीठाकुर में भावान्तर हुआ। नरेन्द्रनाथ सब कुछ देख रहे थे। वह उस दिन बहुत सावधान रहे। तिसपर भी श्रीठाकुर के स्पर्श करते ही नरेन्द्रनाथ हजार प्रयत्न करने पर भी अपने को सम्हाल न सके। उनका वाह्य ज्ञान पूर्णतया लुप्त हो गया। कबतक वैसी स्थिति में रहे और कैसे ज्ञान लौट आया, उसका कुछ भी वह जान न सके। परन्तु बाहरी चेतना लौट आते ही उन्होंने देखा कि——श्रीरामकृष्ण उनके सीने पर प्यार से हाथ फेर रहे हैं। उनके चेहरे पर मस्कराहट थी। नरेन्द्रनाथ चिन्तित हो पड़े और अपने को असहाय समझने लगे।

उस दिन की घटना के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव ने बाद में कहा था——"बाहरी चेतना लुप्त हो जाने पर नरेन्द्रनाथ से उस दिन मैंने अनेक बातें पूछी थीं। वह कौन है? कहाँ से आया? क्यों आया (जन्मा)? संसार में कबतक रहेगा...इत्यादि। उसने भी उस अवस्था में अपनें भीतर प्रविष्ट होकर उन प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दिया था।...उसके सम्बन्ध में मैंने जो कुछ देखा और सोचा था, उसके उस समय के भीतर उन सब की सत्यता प्रमाणित हो गयी थी। वह सब गुप्त बातें हैं। उन बातों से मैं जान गया था——नरेन्द्र जिस दिन जान सकेगा कि वह कौन है, उस दिन वह इस लोक में नहीं रहेगा। दृढ़संकल्प की सहायता से योग बल के द्वारा वह उसी क्षण शरीर छोड़कर चला जायगा। नरेन्द्र ध्यान-सिद्ध महात्मा है।"...

श्रीरामकृष्ण के पार्षदों में नरेन्द्रनाथ का एक विशिष्ट स्थान था। वह युग-धर्म के प्रचार के लिए सर्वश्रेष्ठ यन्त्ररूप से निर्वाचित हुए थे। श्रीरामकृष्णदेव ने कहा था——"नरेन्द्र लोक-शिक्षा देगा?" उसी समय से अनेक प्रकार की शिक्षा-दीक्षा तथा आध्यात्मिक शक्ति संक्रमण के द्वारा नरेन्द्रनाथ के जीवन को अपने भाव के प्रचार के सर्वाङ्ग-सुन्दर तथा शक्तिशाली यंत्र में रूपान्तरित करने के सुमहान् कार्य में वह व्रती हुए।

❀ ❀ ❀ ❀

लम्वे पाँच साल तक नरेन्द्रनाथ, श्रीरामकृष्णदेव के सान्निध्य लाभ का सौभाग्य प्राप्त किया था। उस समय के भीतर उनके जीवन में आमूल परिवर्तन हुआ था। सर्वभावमय श्रीरामकृष्ण ने अनेक प्रकार के घात-प्रतिघातों और संघर्षों के माध्यम से नरेन्द्रनाथ के जीवन को पूर्ण किया था। नरेन्द्रनाथ यद्यपि श्रीरामकृष्ण पर श्रद्धा रखते थे तथापि विना विचारे उनकी वात नहीं मानते थे। वह दक्षिणेश्वर जाते, परन्तु काली-मन्दिर में नहीं घुसते। मूर्ति-पूजा में उन्हें विश्वास नहीं था। इस कारण काली-मूर्ति को वह प्रणाम भी नहीं करते थे। श्रीरामकृष्ण के अलौकिक दर्शन आदि पर नरेन्द्रनाथ उस समय भी सत्यरूप से विश्वास नहीं करते थे। वह एक ही वात में सव कुछ उड़ाकर श्रीरामकृष्ण से कहते थे—"आप ईश्वरीय रूप आदि जो कुछ देखते हैं वह सव दिमाग के ख्याल हैं।"

नरेन्द्रनाथ की वात से श्रीरामकृष्ण थोड़ा भी खिन्न नहीं होते थे। वह असीम धैर्य के साथ उन्हें शिक्षा-दीक्षा देते जा रहे थे। श्रीठाकुर ने आध्यात्मिक शक्ति के प्रभाव से नरेन्द्रनाथ के विद्रोही मन को वशीभूत कर लिया। अन्त में श्रीरामकृष्णदेव को उन्होंने पथ-प्रदर्शक तथा इष्ट गुरु और अवतार-श्रेष्ठ रूप से मान लिया।...वहुत दिनों के वाद की बात है—१८९५ ई० में अमेरिका से स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक गुरुभाई स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखा था,..."रामकृष्ण-अवतार में ज्ञान, भक्ति, प्रेम थे—अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रेम, अनन्त कर्म, अनन्त जीवदया थी। तुम लोग अभी समझ नहीं सके हो। 'श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्' (कोई-कोई इनके विपय में सुनकर भी जान नहीं सके)।...सारी हिन्दू जाति सहस्रों युगों से जो विचार करती आयी है, उन्होंने एक ही जीवन में उन सभी भावों की उपलब्धि की है। उनका जीवन सभी जातियों के वेदों की जीवित टीका रूप है।..." अन्यत्र कहा था, "सव भावों का ऐसा समन्वय संसार के इतिहास में और कहीं भी खोजने से नहीं मिलेगा। इससे समझ लो कि वे कौन देह धारण कर के आये थे। अवतार कहने से उन्हें छोटा करना होता है।"

गम्भीर योग-दृष्टि-सम्पन्न श्रीरामकृष्णदेव जानते थे कि नरेन्द्र कौन हैं और क्यों देह धारण कर आया है। वह यह भी जानते थे कि नरेन्द्रनाथ को यन्त्र वनाकर उनके युग-धर्म-प्रचार का महल तैयार होगा।

एकदिन दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव के कमरे में केशवचन्द्र सेन, विजयकृष्ण गोस्वामी आदि प्रतिष्ठित ब्राह्म नेता उपस्थित थे। अनेक ईश्वरीय प्रसंग होते रहे।...केशव, विजय आदि के विदा लेकर चले जाने के वाद नरेन्द्रनाथ की ओर देखकर श्रीरामकृष्णदेव ने स्नेहपूर्ण स्वर से कहा—"मैंने देखा, केशव जिस विशेष शक्ति के उत्कर्ष से जगत्-विख्यात हुआ है,—नरेन्द्र के भीतर वैसी १८ शक्तियाँ पूर्ण मात्रा में पायी जाती हैं।...मैंने और भी देखा, केशव और विजय का चित्त दीप-शिखा की तरह ज्ञानालोक से उज्ज्वल हो रहा है और नरेन्द्र के भीतर ज्ञान-सूर्य उदित होकर माया-मोह के लेश तक को विदूरित कर दिया है।"

नरेन्द्रनाथ अपनी प्रशंसा सुनकर गर्वस्फीत नहीं हुए, वल्कि साथ ही साथ प्रतिवाद करते हुए कहा था—"महाशय! क्या कहते हैं आप? ऐसी वातें सुनकर लोग आपको पागल कहेंगे। कहाँ तो जगत् विख्यात केशवसेन तथा महामना विजय गोस्वामी और कहाँ मेरे जैसे नगण्य एक कालेज का छोकरा। आप इनके साथ तुलना करके फिर कभी ऐसी बातें न कहें।"

मुस्कराकर श्रीठाकुर ने कहा—"मैं क्या करूँ! तू सोचता है, क्या मैं ही कह रहा हूँ? माँ (जगदम्वा) ने मुझे दिखाया, इसी से तो मैं कहता हूँ।"

स्वामी विवेकानन्द के सम्वन्ध में श्रीरामकृष्ण देव की बात अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई है। स्वामी जी क्या थे, उनके भीतर कैसी अद्‌भुत् दैवी शक्ति का विकास हुआ था और विश्व के कल्याण के लिए वह क्या कर गये हैं, उसे देखने और सोचने का समय आया है। स्वामी जी ने कहा था—"यदि एक और विवेकानन्द रहता तो समझ सकता, विवेकानन्द क्या कर गया है।" उन्होंने साम्य, मैत्री, स्वाधीनता, विश्वभ्रातृत्व, विश्व-मानवता और सवसे ऊपर आध्यात्मिक क्षेत्र में जो भावराशि दी है—जगत् के

कल्याण के लिए, विश्व की शान्ति के लिए, वह अब क्रमशः विभिन्न आधारों के भीतर से कार्यकारी हो रही है। स्वामीजी की अमोघ भाव-धारा समग्र विश्व के चिन्ताशील व्यक्तियों को उद्दीपना दे रही है। वह अभी भी भावरूप में जीवित हैं तथा शत-सहस्र कोटि हृदयों में अनुप्रेरणा दे रहे हैं।

चार

श्रीरामकृष्ण के जीवनादर्श से अनुप्राणित होकर चरम और परम सत्य श्रीभगवान् को लाभ करना ही नरेन्द्रनाथ के जीवन का एकमात्र लक्ष्य हुआ। उन्होंने सब प्रकार का विलास व्यसन छोड़कर कठोर ब्रह्मचारी का व्रत ग्रहण कर लिया। अध्ययन में उनकी अवहेलना नहीं थी, किन्तु वह व्याकुल हृदय से रात्रि का अधिक समय ईश्वर-प्रणिधान में बिता दिया करते थे। बी० ए० परीक्षा देने के अनन्तर नरेन्द्रनाथ ने बी० एल० पढ़ना आरम्भ किया। ठीक इसी समय (१८८४ ई० के प्रारंभ में) उनके पिता का देहान्त हो गया। पिता की आमदनी यथेष्ट थी, परन्तु वह एक कौड़ी भी नहीं छोड़ जा सके; बल्कि कुछ ऋण था। दो-एक मास के भीतर ही नरेन्द्रनाथ के पारिवारिक जीवन में महासंकट की अवस्था उपस्थित हुई। पहले माँ, भाई, बहन आदि छः सात व्यक्तियों के अन्न-वस्त्र का प्रश्न सामने आया। मौका पाकर लेनदार लोग भी एक-एक करके दर्शन देने लगे। नरेन्द्रनाथ को जीवन में पहले पहल दरिद्रता का सामना करना पड़ा। वह नंगे पाँव फटा कुरता पहने नौकरी की तलाश में वृथा ही भटकने लगे। माता का मलिन मुख उनके चित्त को व्याकुल करता था। छोटी-छोटी भाई-बहनों के शीर्ण शरीर देखकर वह बेचैनी से चुपचाप आँसू बहाते थे।...प्रातः उठते ही भण्डार की अवस्था जानकर स्नान के बाद ही 'निमन्त्रण है' कहकर घर से निकल जाते थे और नौकरी की तलाश में अनेक स्थानों में घूमते हुए दिन भर बिना खाये-पिये रात को घर लौट आते थे। इसी मौके से महामाया ने भी उन्हें एक कठोर परीक्षा में डाल दिया। एक धनी घर की महिला ने समाचार भेजा कि नरेन्द्रनाथ उनकी

विपुल सम्पत्ति को ग्रहण कर अपना धनाभाव दूर कर सकते हैं। भीषण अवज्ञा और कठोरता द्वारा वह उस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। मौका पाकर उनके कुटुम्बियों ने जबर्दस्ती उनके रहने के मकान पर कब्जा कर लिया। वह अपने माँ-भाई-बहनों को लेकर नानी के मकान में चले आये। उच्च अदालत में मुकदमा दायर कर दिया गया। सम्बल-हीन और आश्रय-हीन अवस्था में पड़कर वह चारों ओर अन्धकार देखने लगे।

नरेन्द्रनाथ प्रतिदिन भोर में श्रीभगवान् से प्रार्थना करके उनके नाम का उच्चारण करते हुए घर से निकलते थे। एकदिन उनकी माता ने उसे सुनते ही झिड़ककर कहा—"चुप रह लौण्डे ! बचपन से ही तो तू भगवान्-भगवान् करता है। भगवान् ने तो सब कुछ कर दिया !" दुर्भाग्य के कठोर आघात से भुवनेश्वरी देवी की ईश्वर-भक्ति भी विचलित हो गई थी। नरेन्द्रनाथ के मन में उनकी बातें तीर की तरह चुभ गईं। स्तब्ध होकर वह सोचने लगे—'क्या भगवान् सचमुच ही हैं ? क्या वह हमारी प्रार्थना सुनते हैं ? क्या वह मंगलमय हैं ? तो उनके राज्य में इतने अमंगल क्यों ? महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की बातें उन्हें याद आयीं। उन्होंने कहा था—'यदि भगवान दयामय और मंगलमय हैं तो लाखों व्यक्ति भूखों क्यों मरते ह ?'

नरेन्द्रनाथ ने कितनी गंभीर हृदय-वेदना से भगवान् के अस्तित्व में सन्देह प्रकट किया था, वह विशेष विचार के योग्य है।

मानो दुःखों के भस्म-स्तूप से ही भविष्य आर्त-बन्धु स्वामी विवेकानन्द का जन्म हुआ। श्रीरामकृष्ण देव ने एकदिन कहा था—"नरेन्द्रनाथ जिस दिन दुःख और दरिद्रता के संस्पर्श में आयेगा उस दिन उसके चरित्र का यह दम्भ असीम करुणा में विगलित हो जायेगा।" श्रीरामकृष्ण देव की वह बात अक्षरशः सत्य हुई है। सांसारिक दुःख-कष्टों के दहन ने ही उन्हें विश्व-प्रेमिक विवेकानन्द में रूपान्तरित कर दिया था। इसी कारण वह गरीब-दुःखियों के प्रति इतने सहानुभूति-सम्पन्न हो सके थे।

❀ ❀ ❀ ❀

अनेक प्रयत्नों से भी सांसारिक दुःख-कष्टों के हाथ से परित्राण का कोई उपाय नरेन्द्रनाथ नहीं कर सके। बहुत घूमने भटकने के वाद एटार्नी कार्यालय में उन्हें एक अस्थायी नौकरी मिली । कुछ पुस्तकों का अनुवाद करके थोड़ा बहुत धन मिलने लगा। स्कूल की मास्टरी कुछ दिनों के लिए मिली थी। किन्तु माँ-भाई-वहनों के पालन पोषण की स्थायी व्यवस्था न हो सकी।

ऐसे समय उनके मन में विचार उठा कि ठाकुर की प्रार्थना तो भगवान् सुनते हैं। यदि वह मेरी इस दुर्दशा के प्रतिकार के लिए ईश्वर से प्रार्थना करें तो कोई न कोई उपाय हो सकता है और वह तो मेरा कोई भी अनु-रोध या प्रार्थना नहीं टालते।

ऐसा विचार लेकर एकदिन नरेन्द्रनाथ दक्षिणेश्वर पहुँच गये । श्री ठाकुर से उन्होंने कहा—"आपको कोई व्यवस्था कर ही देनी होगी। अपनी माँ से जरा कहिये, तो मेरे सारे कष्टों का निवारण हो जायेगा।" श्रीठाकुर धीमे स्वर से बोले—"अरे! मैं तो माँ से वैसी चीजें नहीं माँग सकता। तू ही जाकर क्यों नहीं माँगता ? माँ को नहीं मानता, इसी से तो तुझे इतना कष्ट है।"

श्रीरामकृष्ण देव ने थोड़ी देर मौन रहकर कहा—"आज मंगलवार है, म कहता हूँ, आज रात को माँ के पास जाकर तू जो माँगेगा माँ तुझे वही देंगी।" श्रीरामकृष्ण देव की बात सुनकर नरेन्द्रनाथ को कुछ सान्त्वना मिली।

रात एक प्रहर बीते श्रीठाकुर ने उन्हें काली मन्दिर में भेजा। मन्दिर में जाकर माँ की ओर देखते ही नरेन्द्रनाथ का हृदय एक अनिर्वचनीय आनन्द से भर गया। ऐसा लगा, मानो माँ चिन्मयी हैं। वह अनन्त प्रेम और सौन्दर्य की अधीश्वरी हैं। माँ की जीवित अवस्थिति का अनुभव कर उन्होंने भक्तिनम्र चित्त से प्रणाम किया। सांसारिक दुःख-कष्टों की चिन्ता उनके मन में नहीं रही। उन्होंने नतमस्तक होकर प्रार्थना की—"माँ मुझे विवेक वैराग्य दो, ज्ञान और भक्ति दो, अपने निरंकुश दर्शन दो।"

एक अलौकिक आनन्द और शान्ति से उनके मन-प्राण प्लावित हो गये। भावाविष्ट की तरह वह मन्दिर से निकल कर श्रीठाकुर के पास आये। श्रीठाकुर के प्रश्न से नरेन्द्रनाथ चौंक उठे। उन्होंने सिर झुकाये कहा—"नहीं तो, माँ को देखते ही मैं सब कुछ भूल गया। अपने दुःख-कष्टों की बात माँ से मैं कुछ भी न कह सका।" श्रीठाकुर ने इस पर कहा—"जा जा, फिर जा, माँ को जाकर अपने दुःख-मोचन की प्रार्थना जता।"

इसी ढंग से श्रीठाकुर ने नरेन्द्रनाथ को तीन बार मन्दिर में भेजा, परन्तु हर बार ही वह अपने पारिवारिक दुःख-कष्टों के दूर करने की प्रार्थना जताना भूल गये। केवल जगन्माता के चरणों में ज्ञान भक्ति की प्रार्थना करके मन्दिर से लौट आये। उसके अनन्तर नरेन्द्रनाथ को ऐसा प्रतीत हुआ, मानो ये सारे खेल श्रीठाकुर के ही हैं। उन्होंने जादूगर की तरह मेरे मन को घुमा दिया है। परन्तु माँ-बहनों की बात वह भूल न सके। उन्होंने श्रीठाकुर से कहा—"ये सब आप ही के काम हैं। आपने ही मेरे मन को पलट दिया है। अब आप ही को मेरे माँ-भाई-बहनों का कुछ प्रबन्ध कर ही देना होगा। नहीं तो मैं आपको नहीं छोड़ूंगा।"

अनेक अनुरोध-उपरोध के बाद श्रीठाकुर ने कहा—"अच्छा जा माँ से कहूँगा, जिससे तेरे अन्नवस्त्र का अभाव फिर कभी न हो।"

नरेन्द्रनाथ ने माँ को मान लिया है, इससे श्रीठाकुर को बड़ा आनन्द हुआ, उनके मन से दुश्चिन्ता का घना मेघ अपसारित हो गया। उस दिन से नरेन्द्र का नया जीवन आरम्भ हुआ। उन्होंने आद्याशक्ति जगज्जननी को मान लिया है, उन पर विश्वास किया है, प्रतीक से वह प्रत्यक्ष में आये हैं, प्रतीक उपासना की मर्म-वाणी उनके अन्तर में ध्वनित होने लगी है, भगवान् के मातृभाव को उन्होंने यही पहले पहल ग्रहण किया, प्रतिमा ईश्वर के प्रतीक हैं, इसे भी उन्होंने मान लिया है। हिन्दू प्रतिमा के अवलम्बन से श्रीभगवान् ही की उपासना करते ह। सांसारिक दुःखदारिद्रय मनुष्य को ऐसी ही शिक्षा देते हैं और नास्तिक को आस्तिक बनाते हैं।

नरेन्द्रनाथ की दुश्चिन्ता की समाप्ति हो गई। माँ काली की महिमा वह अब समझ चुके थे। माँ केवल प्रस्तरमयी ही नहीं, वह चिन्मयी, ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरी, चतुर्वर्गदायिनी, भुक्ति-मुक्ति-प्रदायिनी तथा वराभय देनेवाली हैं। जगन्माता का स्तुतिगान करने के लिए उनका हृदय व्याकुल हो उठा। वह उस समय तक माँ का गाना एक भी नहीं जानते थे। इसी कारण श्रीठाकुर से अनुरोध किया—"मुझे माँ के गान सिखा दीजिये।"

श्रीठाकुर मधुर कण्ठ से गाने लगे—

"(आमार) माँ, त्वं हि तारा। तुमि त्रिगुणधरा परात्परा" (मेरी माँ, तुम तारा हो, तुम त्रिगुणमयी तथा श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ हो) इत्यादि। श्रीठाकुर से वह गाना सीखकर नरेन्द्रनाथ ने आनन्द में मस्त होकर उस गान को बार-बार गाते हुए सारी रात बिता दी।

श्रीठाकुर की उस दिन की प्रार्थना के अनन्तर नरेन्द्रनाथ के पारिवारिक अभाव आंशिक रूप से दूर हुए। वह कुछ-कुछ काम पाने लगे। श्रीरामकृष्ण देव भी विविध साधनाओं के भीतर से उन्हें धीरे-धीरे ऊपर भूमानन्द की ओर चालित करने लगे। अनेक प्रकार की अतीन्द्रिय दिव्यानुभूतियों के माध्यम से नरेन्द्रनाथ का जीवन क्रमशः परम सत्य में प्रतिष्ठित हुआ। श्रीरामकृष्ण देव के प्रत्येक आचरण को वह नयी दृष्टि से देखने लगे।

१८८४ ई० की घटना है। विविध ईश्वरीय प्रसङ्गों के बीच में वैष्णव-धर्म की आलोचना के विषय में श्रीठाकुर ने कहा—"नाम में रुचि, जीव में दया, वैष्णव की पूजा—ये तीन वैष्णव धर्म के मूल उपदेश हैं। जो नाम वही नामी ईश्वर हैं, नाम और नामी दोनों को अभिन्न जानकर अनुराग के साथ भगवान् का नाम लेना चाहिए। भक्त और भगवान्, कृष्ण और वैष्णव दोनों को अभिन्न समझकर सदा साधु भक्तों की श्रद्धा पूजा वन्दना करना उचित है और कृष्ण ही अखिल संसार रूप हैं—ऐसी धारणा रखकर सब जीवों पर दया . . ।" इतना कहते ही वह समाधिस्थ हो गये। समाधि भंग होने पर वह फिर कहने लगे—"जीवों पर दया !

जीवों पर दया ! धत् साले, कीटाणु कीट तू जीवों पर दया करेगा ? दया करने का तू कौन होता है ? नहीं, नहीं, जीवों पर दया नहीं, शिव समझकर जीवों की सेवा।"

सभी ने मुग्ध होकर उस देव-वाणी को सुना, परन्तु उन बातों में जो परम सत्य निहित है, उसे समझा था केवल नरेन्द्रनाथ ने। उन्होंने कमरे से वाहर आकर वाद में कहा था—"कैसा अद्भुत प्रकाश आज श्रीठाकुर की वात से मुझे दिखाई पड़ा ... श्रीठाकुर ने भावावेश में आज जो वात कही, उससे वन के वेदान्त को घर में लाया जा सकता है, संसार के सभी कामों में उस परम सत्य का प्रयोग किया जा सकता है। जीवन के प्रत्येक क्षण में जिनके सम्पर्क में आना पड़ता है, जिन्हें हम प्यार करते हैं, श्रद्धा और सम्मान करते हैं, वे सभी ईश्वर के अंश—स्वयम् ईश्वर हैं। संसार के सभी को इसी तरह शिव (ईश्वर) जानकर उनकी सेवा करने पर चित्त शुद्ध होता है और स्वयम् भी चिदानन्दमय ईश्वर का अंश, शुद्ध-वुद्ध-मुक्त-स्वभाव है, इस तत्त्व की धारणा की जा सकती है। भगवान यदि कभी समय दें तो आज जिसे सुना, इस सत्य का प्रचार मैं संसार में सर्वत्र करूँगा—पण्डित-मूर्ख, धनी-दरिद्र, व्राह्मण-चण्डाल सवको सुनाकर मोहित करूँगा।"

स्वामीजी ने अपने जीवन में वैसा ही किया था। मनुष्य जाति के सामने धर्म-जगत् का एक नवीन क्षितिज (दिक्-चक्रवाल) उन्होंने उद्घाटित कर दिया, प्रतिदिन के जीवन में धर्मसाधना का एक नूतन मार्ग उन्होंने उन्मुक्त किया था, मनुष्य की मुक्ति-साधना का एक नवीन मन्त्र सिखाया, और सुना दिया था वह मन्त्र—"शिव-ज्ञान से जीव की सेवा।" इस महामन्त्र के भीतर व्यष्टि-मुक्ति का बीज—साम्य, मैत्री और विश्व-भ्रातृत्व का वीज निहित है। सवके निकट स्पृश्य, अस्पृश्य, प्रतिवेशी, समाज, जाति, उपजाति, महाजाति के भीतर तथा एक ही धर्म की विभिन्न शाखाओं या मतवादों तथा विभिन्न धर्मों में एकता स्थापित करने के लिए मनुष्य मात्र की शिव जानकर सेवा ही एकमात्र सहज

उपाय है। मनुष्य ही श्रीभगवान् के श्रेष्ठतम प्रतीक और मनुष्य की सेवा ही भगवान् की उच्चतम पूजा है । नर-नारायण सेवा, विशेष रूप से भारत की विभिन्न जातियों तथा ऊपर ही ऊपर विवाद करनेवाले विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों में एकता साधन के लिए विशेष सहायता दे सकती है। करुणा-मय भगवान् श्रीरामकृष्ण देव के सर्वधर्मसमन्वय-वेद का प्रथम सूत्र ही है "नरनारायण सेवा।" स्वामी विवेकानन्द ने विश्व के चिर कल्याण के लिए इस वाणी का प्रचार किया था। इसके प्रयोग के परिणाम से सुदूर-प्रसारी विश्व-शान्ति और मानव जाति का अमोघ कल्याण होगा।

दक्षिणेश्वर के मधुमय दिन क्रमशः समाप्त हो गये। श्रीरामकृष्ण देव कण्ठरोग से आक्रान्त होकर पहले श्यामपुकुर और वाद में (१८८५ ई० के दिसम्बर ११ को) काशीपुर आये। श्यामपुकुर से ही श्रीठाकुर की सेवा-सुश्रूषा में नरेन्द्रनाथ ने आत्म-नियोग किया। काशीपुर का उद्यानभवन श्रीरामकृष्णसंघ के इतिहास में गुरु-सेवा, भगवदाराधना, तपस्या तथा संघ-रचना के स्थान रूप में चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने एकदिन कुमार वैरागियों को अपने हाथ से गेरुआ वस्त्र और जपमाला देकर उनके हृदय में आध्यात्मिक शक्ति का संचार करते हुए संन्यास व्रत में दीक्षित किया।

उस समय नरेन्द्रनाथ तीव्र साधन भजन में समय विताते थे। गुरु-सेवा के अवकाशकाल में वह रात को धुनी जलाकर गुरु-भाइयों के साथ रात-रात भर ध्यान में विता देते थे। नरेन्द्रनाथ के हृदय में व्याकुलता क्रमशः वढ़ती ही चली। वह समझ गये थे कि श्रीरामकृष्ण देव मनुष्य-देह में और अधिक दिन नहीं रहेंगे। परन्तु परम सत्य का लाभ अभी तक नहीं हुआ। वह आहार निद्रा में उदासीन होकर कठोरतम तपस्या में डूब गये। उनके मन में निर्विकल्प समाधि में स्थित होने की आकांक्षा वहुत ही तीव्र हो उठी। उन्होंने एकदिन श्रीठाकुर से अपने चित्त की आकांक्षा निवेदित की। हृदय की आर्ति जताकर रुँधे हुए कण्ठ से कहा—"मैं शुकदेव की तरह एकदम पाँच-छः दिनों तक समाधि में डूबा रहना चाहता हूँ। उसके

वाद केवल देह-रक्षा के लिए कुछ नीचे उतर आकर फिर समाधिस्थ हो जाऊँ, यही मेरी इच्छा है।"

श्रीठाकुर ने उसी क्षण गंभीर-स्वर से धिक्कारते हुए कहा—"छी-छी, तू इतना वड़ा आधार है—तेरे मुख से ऐसी वात! मैंने सोचा था, कहाँ तो तू एक विशाल वटवृक्ष की तरह होगा—तेरी छाया में हजारों नर-नारी आश्रय पायेंगे—वैसा न होकर तू केवल अपनी ही मुक्ति चाहता है?"

नरेन्द्रनाथ की समझ में आया कि श्रीठाकुर का हृदय कितना महान् है। पश्चात्ताप से उनका अन्तर भर गया। अपनी मुक्ति की कामना तो एकदम स्वार्थपरता है। वह धमकी खाकर चुपचाप आँसू वहाने लगे, किन्तु उनकी प्रार्थना अपूर्ण नहीं रही। थोड़े ही दिनों के भीतर एकदिन सन्ध्या समय नरेन्द्रनाथ काशीपुर के वगीचे में ध्यानमग्न हो वैठे थे। क्रमशः उनका मन निर्विकल्प समाधि में लीन हो गया। शरीर स्थाणु की तरह हो गया। वाहर से मृतवत् प्रतीत होने लगा। नरेन्द्रनाथ की वैसी अवस्था देखकर एक गुरुभाई भयभीत होकर घवराते हुए श्रीठाकुर के पास जाकर वोला—"नरेन्द्र मर गया है।" चारों ओर हलचल मच गयी। श्रीठाकुर ऊपर के कमरे में थ और नरेन्द्रनाथ नीचे के कमरे में समाधिलीन हो गये। श्रीठाकुर ने सुनकर कहा—"अच्छा हुआ, रहे कुछ देर तक उसी अवस्था में, इसीलिए वह मुझे वार-वार तंग कर रहा था।"

रात के एक पहर के वाद नरेन्द्रनाथ के सहजावस्था प्राप्त होकर श्रीठाकुर के निकट आते ही उन्होंने गम्भीर स्वर में कहा—"क्यों रे! अवकी तो माँ ने तुझे सव कुछ दिखा-सुना दिया। परन्तु चाभी मेरे पास रखी रहेगी। अव तुझे माँ का काम करना होगा, माँ का काम समाप्त होने पर फिर यह अवस्था तुझे मिल जायगी"... इस प्रकार श्रीठाकुर ने चाभी से समाधि-पथ वन्द कर दिया। उसी से विवेकानन्द का विश्व-प्रेमिक रूप और उसी से वह जीव-दुःख-कातर परित्राता विवेकानन्द हो सके। श्रीरामकृष्णदेव ही व्रह्मलोक के ऋषि को ध्यानभूमि से उतार

लाये थे और संसार के कल्याण के कार्य में उन्हें लगाया था। विवेकानन्द थे श्रीरामकृष्णदेव की वाणी, उन्हें यन्त्र वनाकर श्रीरामकृष्णदेव ने अपने युगधर्म का मनुष्य-जाति के शाश्वत कल्याण के लिए उत्तमरूप से प्रचार किया था। शरीर के रोग के आश्रय से श्रीरामकृष्णदेव ने अपने त्यागी शिष्यों को संघवद्ध किया और उसके कुलपति वनाया नरेन्द्रनाथ को, जिससे वह समस्त विश्व में उनके साम्य, मैत्री, प्रेम, विश्वभ्रातृत्व, त्याग, तपस्या, ईश-परायणता तथा महान् समन्वय की वाणी हर एक नर-नारी के पास ले जाय।

❀ ❀ ❀ ❀

श्रीरामकृष्णदेव मनुष्य-देह छोड़ने के लिए तैयार हो रहे थे। इस समय वह नरेन्द्र को हर घड़ी अपने पास रखना चाहते थे। पास विठाकर एकान्त में अनेक चर्चायें होती थीं।...वह नरेन्द्र के ऊपर अपने असमाप्त कर्मों का भार सौंपते जा रहे थे। एकदिन श्रीठाकुर ने एक कागज पर लिख दिया—"नरेन्द्र लोकशिक्षा देगा।" ...मानो नरेन्द्र को उन्होंने "विल्ला" दे दिया।

नरेन्द्रनाथ ने थोड़ा आनाकानी करके कहा, "मैं वैसा काम नहीं कर सकूंगा।" श्रीठाकुर ने तुरंत दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—"तेरा सर करेगा" अर्थात् तुझे करना ही पड़ेगा। श्रीरामकृष्णदेव ने नरेन्द्र की गरदन पकड़कर सब काम करा लिया था।... नरेन्द्रनाथ को विश्वास-अविश्वासों, अनेक प्रकार की दुःख-वेदनाओं तथा संघर्षों के भीतर से लाकर श्रीराम-कृष्णदेव ने अपने ही हाथ से ठोंक-पीटकर विवेकानन्द वनाया था।... श्रीठाकुर की अमोघ इच्छा-शक्ति के यंत्ररूप थे वह। विवेकानन्द ने उसी वेदमूर्ति श्रीरामकृष्णदेव की वाणी ही का प्रचार, विश्ववासियों के निकट किया था। श्रीरामकृष्णदेव किसी विशेष जाति या धर्म के लिए नहीं आये थे। वह आये थे सनातन वैदिकधर्म का जीवित रूप लेकर—नूतनतम प्रकाशरूप से तथा विश्वधर्म के प्रतीकरूप से।...इस परम सत्य को संसार में ज्ञात कराने का प्रयोजन था। इसी कारण स्वामी विवेकानन्द का आग-मन हुआ था।

देहत्याग के तीन-चार दिन पहले एकदिन सन्ध्या समय श्रीठाकुर ने नरेन्द्र को वुलाया। उनके घर में कोई नहीं था। दरवाजा वन्द कर दिया गया। नरेन्द्र को पास विठाकर उनके नेत्रों के ऊपर एकटक देखते हुए श्रीठाकुर समाधि में लीन हो गये। उस समय नरेन्द्रनाथ को ऐसा अनुभव हुआ मानो श्रीठाकुर के शरीर से विजली की तरह एक ज्योति अपने शरीर में प्रविष्ट हो गयी। क्रमशः वह भी समाधिस्थ हो गये। वहुत देर तक वह उसी अवस्था में रहे। वाहरी चेतना लौट आने पर नरेन्द्रनाथ ने देखा--समाधि से व्युत्थित श्रीरामकृष्णदेव के नेत्रों से आनन्द के आँसुओं की धारा वह रही है। इसके वाद श्रीठाकुर ने गद्-गद् कण्ठ से कहा-- "आज मैं अपना सर्वस्व तुझे देकर फकीर हो गया। तू इस शक्ति के वल पर संसार के अनेक काम कर सकेगा। काम समाप्त होते ही लौट जायगा। नरेन्द्रनाथ भी रोने लगे।...

नरेन्द्रनाथ के भीतर शक्तिरूप से श्रीरामकृष्ण देव अनुप्रविष्ट हुए। श्री-ठाकुर की विपुल आध्यात्मिक शक्ति के वह उत्तराधिकारी हुए। एक दीपक की शिखा से एक दूसरा दीपक जल गया। इसके अनन्तर और भी सैकड़ों दीपक जल उठे थे।...दोनों एक हो गये। महाह्रद में महानद का सम्मि-लन हुआ।

❀ ❀ ❀ ❀

देहत्याग के दो दिन पूर्व श्रीरामकृष्णदेव रोग की भीषण यातना से कातर थे। इतना अधिक कष्ट था कि देखने से आँसू सम्हाले नहीं जा सकते थे। उस समय नरेन्द्रनाथ के मन में ऐसा संकल्प हुआ—'ऐसे समय यदि वह कह सकें कि मैं भगवान् हूँ तभी विश्वास करूँगा।'

आश्चर्य ? नरेन्द्रनाथ के हृदय में उस प्रकार की चिन्ता का उदय होते ही श्रीठाकुर ने उनकी ओर देखकर सहज स्वर में कहा—"अभी भी तुझे अविश्वास है ? मैं सत्य वोलता हूँ जो राम और कृष्ण थे, वही इस समय इस शरीर में रामकृष्ण--परन्तु तेरे वेदान्त की ओर से नहीं"। वज्राहत के समान नरेन्द्रनाथ स्तम्भित हो गये, सन्देह के कारण पश्चात्तापसे वह

रोने लगे। श्रीरामकृष्ण कौन हैं और क्यों आये हैं, उनकी मर्मवाणी उनके हृदय में उज्ज्वल ज्योति के अक्षरों में मुद्रित हो गयी।

१८८६ ई० के १६ अगस्त (३१ श्रावण) को झूलन पूर्णिमा की रात्रि १ वजकर ६ मिनट पर महानिशा में तीन बार काली नाम का उच्चारण कर श्रीरामकृष्णदेव समाधिमग्न हो गये, दूसरे दिन दोपहर तक वह उसी समाधि अवस्था में थे। वह समाधि ही महासमाधि में परिणत हो गयी। वह शरीर छोड़कर स्व-स्वरूप में मिल गये।...

पाँच

श्रीरामकृष्णदेव को केन्द्र बनाकर नरेन्द्रनाथ आदि १६ *युवक भक्त काशीपुर में सम्मिलित हुए थे। श्रीठाकुर ने उन्हें त्याग के मंत्र में दीक्षित किया था, किन्तु उनके देहत्याग के साथ-साथ उनके रहने का स्थान भी न रहा। ७ दिन वाद ही काशीपुर के उद्यान भवन के किराये की अवधि समाप्त होते ही कुछ लोग घर लौटकर अध्ययन में लग गये, कोई तीर्थ-भ्रमण में निकल पड़े। श्रीरामकृष्णदेव जो त्यागी-संघ संगठित कर गये थे क्या उसका स्थायित्व इसी तरह समाप्त हो गया?

नरेन्द्रनाथ का चित्त व्याकुल हो उठा। श्रीठाकुर देहत्याग के पूर्व उन्हीं के ऊपर युवक भक्तों का भार सौंप गये थे, परन्तु वह तो स्वयम् निष्किञ्चन संन्यासी हैं। वह भक्तप्रवर वलराम वसु के भवन को केन्द्र वनाकर अन्यान्य

---

* श्रीरामकृष्णदेव के संन्यासी शिष्य १६ (सोलह) थे। उनके पूर्व नाम थे—नरेन्द्र, राखाल, योगीन, वावूराम, निरंजन, तारक, शरत्, शशी, काली, लाटू, हरिनाथ, गोपाल, शारदा, गंगाधर, सुबोध और हरिप्रसन्न। संन्यास-धर्म ग्रहणानन्तर उनके नाम क्रमश:—स्वामी विवेकानन्द, ब्रह्मानन्द, योगानन्द, प्रेमानन्द, निरंजनानंद, शिवानन्द, सारदानन्द, रामकृष्णानन्द, अभेदानन्द, अद्भुतानन्द, तुरीयानन्द, अद्वैतानन्द, त्रिगुणातीतानन्द, अखण्डानन्द, सुवोधानन्द और विज्ञानानन्द हुए।

भक्तों के साथ भगवत् चर्चा चलाने लगे। उस समय श्रीरामकृष्णदेव की इच्छा से एक अचिन्तनीय उपाय द्वारा सभी समस्याओं का समाधान हो गया।

श्रीठाकुर के भक्त सुरेन्द्रनाथ मित्र एकदिन आफिस से आकर अपनी पोशाक खोल रहे थे। अभी संध्या हो रही थी। ऐसे समय श्रीरामकृष्णदेव ने ज्योतिर्मय शरीर में आविर्भूत होकर उनसे कहा–"सुरेन्द्र, तुम क्या करते हो? लड़का निराश्रय होकर भटक रहा है उसके लिए कहीं रहने के स्थान का प्रवन्ध अभी तक नहीं कर सके?" इतना कह कर वे अन्तर्धान हो गये। वह दैववाणी सुनकर सुरेन्द्रनाथ स्तंभित हो गये। वह उसी समय नरेन्द्रनाथ की खोज में निकल पड़े। वलराम वसु के मकान में उनसे भेंट होने पर सुरेन्द्रनाथ ने श्रीठाकुर के दर्शन और आदेश की वात जताकर सजल नेत्रों से कहा–"भाई तुम कहाँ जाओगे? श्री ठाकुर का आदेश है। ... कहीं एक मकान किराये पर लेकर वहाँ तुमलोग रहो। हमलोग भी वीच-वीच में गृहस्थी की ग्लानि मिटाने के लिए वहाँ जायँगे। मैं तो काशीपुर में उनकी सेवा के लिए कुछ-कुछ देता था, उसे वन्द नहीं करूँगा। तुमसे अनुरोध करता हूँ कि कुछ प्रवन्ध शीघ्र ही करो।"...

कुछ दिनों के भीतर ही कलकत्ते के उत्तर प्रांत के वराहनगर में एक भूतहा मकान दस रुपये महीने पर ठीक कर लिया गया। क्रमशः श्रीठाकुर के व्यवहृत बिछौने, वरतन तथा भस्मास्थि लाकर त्यागी भक्तों में कुछ लोग वहाँ रहने लगे। नित्य पूजा, पाठ, ध्यान, जप, कीर्तन, शास्त्रालोचना आदि चलने लगा। गृहस्थ भक्त लोग भी वीच-वीच में वहाँ आते थे। सभी के हृदय में उस समय तीव्र वैराग्य था। ईश्वर लाभ के लिए चित्त व्याकुल हो रहा था। इसी तरह श्रीरामकृष्णदेव के देह-त्याग के डेढ़ महीने के भीतर ही उनके विशेष निर्देश से वराहनगर मठ स्थापित हुआ। आज समस्त विश्व में जो रामकृष्णसंघ द्वारा परिचालित १३८ स्थायी केन्द्र तथा २२ उपकेन्द्र स्थापित होकर अनेक जनहितकर कार्य परिचालित हो रहे हैं, उसकी शुभ सूचना वराहनगर-मठ-केन्द्र से एवं नरेन्द्रनाथ की एकान्त और

अक्लांत चेष्टा से ही सम्भव हुआ है। क्रमशः सभी त्यागी भक्त बराह-नगर मठ में आकर सम्मिलित हुए।

१८८७ ई० के जनवरी मास में नरेन्द्रनाथ आदि युवक भक्तों ने आनुष्ठानिक रूप से विरजाहोम करके संन्यास आश्रम ग्रहण कर लिया। नरेन्द्रनाथ का क्या नाम हुआ था, वह ठीक-ठीक नहीं जाना गया। किसी के मत में विविदिषानन्द अथवा सच्चिदानन्द। अमेरिका जाने के पूर्व उन्होंने स्वामी विवेकानन्द नाम ग्रहण कर लिया था।

त्याग, तपस्या और कृच्छ्रतापूर्ण वराहनगर-मठ का जीवन श्रीरामकृष्ण संघ के इतिहास में एक उज्ज्वल अध्याय है। ईश्वर-दर्शन की वासना हर एक के हृदय में दावाग्नि की तरह प्रतिक्षण प्रज्ज्वलित हो रही थी। भोजन का कुछ भी ठिकाना नहीं था। भिक्षान्न उन दिनों बंगाल में सुलभ नहीं था। इस कारण प्रतिदिन भरपेट भोजन नहीं मिलता था। बाद में स्वामी विवेकानन्द ने कथा-प्रसंग में कहा था—"वराहनगर मठ में ऐसा भी दिन गया है कि खाने का कुछ भी नहीं है।...कुछ दिनों तक "निमक-भात" ही चला, परन्तु उस पर किसी की दृष्टि नहीं थी। जप, ध्यान के प्रवल प्रवाह में उस समय हम लोग वहते जा रहे थे। कभी-कभी केवल कुंदरू की पत्ती उवाल कर उसके साथ निमक-भात ही खाते रहे। अहो! कैसे ही दिन थे वे! उस कठोरता को देखकर भूत भी भाग जाता था, मनुष्य का तो कहना ही क्या?..."

१८८६ ई० के अन्तिम भाग से १८९२ ई० के प्रथमांश तक उस वराहनगर मठ का भूतहा मकान नवीन यतियों का तपस्या-स्थान था। श्रीरामकृष्णदेव के अत्यद्भूत् त्याग, वैराग्य, पवित्रता, भगवान् लाभ के लिए तीव्र व्याकुलता, प्रतिक्षण ईश्वर लाभ के लिए चिन्ता में मत्तता सभी के हृदयों में नवीन प्रेरणा जगा देती थी।...

क्रमशः वराहनगर मठ को प्रतिष्ठित देखकर स्वामीजी कुछ आश्वस्त हुए। उनके गुरुभाई एक-एक करके तीर्थ-पर्यटन में निकल गये। उनके अन्तर में विवेक की पुकार सुनाई पड़ रही थी। उन्हें ज्ञात हो गया था

कि विश्व-आलोड़नकारी विराट कर्त्तव्य उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। श्रीरामकृष्णदेव ने जिस कार्य का आदेश दिया था, उसे सार्थक रूप देने के लिए वह गम्भीर एकाग्रता के साथ सोचने लगे। उनकी चिन्ता के भीतर, नवयुग की उन्मादना, पाश्चात्य सभ्यता की सर्वग्रासी वुभुक्षा और उसके फलस्वरूप दु:ख-वेदना, चारों ओर से उत्थित क्लिष्ट मानवता का नीरव आवेदन तथा भारत के अतीतकाल का अभ्युदय और भविष्यत् समुत्थान और शक्ति का समारोह एक पर एक उठने लगे। वह पुनरुत्थान श्रीरामकृष्ण देव को केन्द्र करके होगा। भारत को जीना होगा, उन्नत और वलिष्ठ होना होगा ——सार्वजनीन कल्याण के लिए। समस्त पृथ्वी की आध्यात्मिक भावधारा पुनरुद्दीपित करने के साथ ही भारत का कल्याण और जागरण विजड़ित है। विश्व के लिए भारत को जीना होगा——सिर उठाकर खड़ा होना होगा, गर्वस्फीत भंगी से अग्रगति के रास्ते से चलना होगा। परन्तु वह किस ढङ्ग से होगा उसे वह उस समय तक पूरी तरह नहीं जान पाये थे। श्रीभगवान् के आदेश के लिए वह प्रार्थना-रत होकर प्रतिक्षा करने लगे।

पहले-पहल स्वामीजी थोड़े दिनों के लिए वैद्यनाथ, सिमुलिया आदि स्थानों में भ्रमण के लिए गये। फिर वराहनगर लौट आये। किन्तु १८८८ ई० में वह सहसा निकल पड़े और नि:सम्वल होकर दण्ड-कमण्डलधारी परिव्राजक संन्यासीरूप से वाराणसी, अयोध्या, लखनऊ, आगरा, वृन्दावन, हाथरस होकर हिमालय के पादमूल हरद्वार और हृषीकेश तक गये थे। 'करतल-भिक्षा तरुतलवास:'——पादचारी संन्यासी थे वे। किन्तु शारीरिक अस्वस्थता और गुरुभाइयों के विशेष अनुरोध से उन्हें कुछ दिनों के वाद ही वराहनगर मठ में वापस आना पड़ा।

इस भ्रमण के माध्यम से उन्होंने वहुत कुछ शिक्षा प्राप्त कर ली और उनकी भविष्य कर्म-पद्धति का भी एक सक्रिय रूप निश्चित हो गया। वह सभी श्रेणियों के मनुष्यों के साथ परिचित हुए और मनुष्य मात्र की दु:ख-वेदना के साथ अपने को एकदम मिला लिया। उन्होंने मानव-आत्मा का करुण आर्तनाद सुना था। देश-प्रेमिक और स्वाधीनता के ऋत्विक

स्वामी विवेकानन्द ने उस भ्रमण के माध्यम से समझ लिया था कि भारत के दुःख-दारिद्र्य का कारण क्या है और यह भी समझ लिया था कि संसार के कल्याण के लिए, खासकर भारत के कल्याण के लिए श्रीराम-कृष्णदेव की सार्वभौम उदार भावधारा के प्रचार का विशेष प्रयोजन है और उस कठिन कार्य के सम्पादन का गुरुतर दायित्व उन्हीं के ऊपर न्यस्त है। उन्होंने कहा था–"श्रीरामकृष्णदेव के प्रभाव से आपात-विच्छिन्न भारत फिर एक होगा।" अन्यत्र लिखा था––"श्रीरामकृष्णदेव के पादतल में बैठकर शिक्षा ग्रहण करने से ही केवल भारत उठ सकेगा। उनके जीवन तथा उनके उपदेश का चारों ओर प्रचार करना होगा––जिससे हिन्दू समाज के सर्वांश में, प्रत्येक अणु-परमाणु में वह उपदेश ओत-प्रोत भाव से व्याप्त हो जाय। कौन यह काम करेगा ? श्रीरामकृष्ण का झण्डा लेकर कौन सारे संसार के उद्धार के लिए यात्रा करेगा ?...प्रभु जिसे मनोनीत करेंगे, वही धन्य है और वही महान् गौरव का अधिकारी है।"...

भारत की एकता और उसके अवलम्बन से समस्त एशिया महादेश तथा सारे विश्व की एकता साधन करने के लिए ही श्रीरामकृष्ण का आविर्भाव हुआ था। उनका समन्वयपूर्ण जीवन था। केवल धर्म के क्षेत्र ही में नहीं, सामाजिक तथा राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी उस आदर्श से विश्व-मानवता, विश्व-भ्रातृत्व और विश्व-प्रेम संगठित होंगे। किस भाव से वह सफल हो सकता है, वही स्वामी विवेकानन्द की चिन्ता का एकमात्र विषय बन गया।

उत्तरभारत के एक प्रान्त में पर्यटन करते समय ही उनके समक्ष प्राचीन, वर्तमान तथा भविष्य भारत का रूप उद्भासित हो उठा था। साथ ही साथ उनकी अभ्रान्त दृष्टि के सामने भविष्य विश्व-मानवता का एक नया रूप उद्भासित हुआ। उनके अन्तर में उस सनातन वैदिक भारत–– पौराणिक इतिवृत्त और किंवदन्ती का महिमा-मण्डित अगणित देव-देवियों का भारत, वह द्राविड़, आर्य और विभिन्न सभ्यताओं की मिलन-भूमि, साम्य, मैत्री और स्वाधीनता जिसकी सभ्यता की मर्मवाणी थी, उस आर्य भारत ने प्रागैतिहासिक युग से जाति वर्ण का भेद न रखकर सभी देशों

और सभी धर्मों के मनुष्यों को अपने भीतर अभय आश्रय दिया है, विश्व-मानवता की जन्म-भूमि वही भारत मानो जाग्रत हो उठा। स्वामी जी वराहनगर मठ में लौट आकर अपने गुरु-भाइयों को अपने विचारों से परिचित कराया।

❀ ❀ ❀ ❀

कुछ दिन वराहनगर में रहने के वाद स्वामीजी १८९० ई० के जुलाई मास में पुनः हिमालय की ओर चल पड़े। पथ-प्रदर्शक रूप में साथ चले तिव्वत और हिमालय भ्रमण में अनुभवी यात्री अन्यतम गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्द। वे पहले भागलपुर, वैद्यनाथ और काशी पहुँचे। वह तरुण भास्कर कहीं भी आत्मगोपन नहीं कर सके। क्षणभर के लिए जिसने उनके साथ वार्तालाप किया, वही उनके भीतर की महाशक्ति का परिचय पाकर मुग्ध हो गया। वह केवल फटे वस्त्र पहने मुण्डित-मस्तक यति ही नहीं थे, बल्कि वह थे भस्माच्छादित वह्नि। जिस प्रतिभा का अनल उनके नेत्रों में प्रदीप्त होता था, उसे वह किसी तरह भी छिपा नहीं रख सकते थे।...

नैनीताल से अल्मोड़ा के रास्ते में स्वामीजी भूख-प्यास से मूर्छित होकर रास्ते के पास पड़ गये। ठीक उसी समय मानो दैव-प्रेरित होकर सामने के कब्रिस्तान के रक्षक एक मुसलमान फकीर ने एक खीरा खिलाकर उनकी प्राण-रक्षा की थी।

अल्मोड़ा में कुछ दिन तपस्या में बिताकर सारदानन्द और कृपानन्द आदि गुरु भ्राताओं को साथ लेकर स्वामीजी उत्तराखण्ड के तीर्थों के दर्शन के लिए निकल पड़े। रास्ते में अखण्डानन्द वहुत रुग्ण हो गये। फल-स्वरूप स्वामीजी का हिमालय-भ्रमण वन्द रखना पड़ा। गुरु भाई की चिकित्सा के लिए वह दूसरे गुरुभाइयों को लेकर देहरादून उतर आये तथा अखण्डानन्दजी की चिकित्सा का प्रवन्ध करके हृषीकेश आकर तपस्या करने लगे। थोड़े दिनों के वाद ही प्रवल ज्वर से आक्रान्त होकर स्वामीजी मरणापन्न हो गये। दैवयोग से एक संन्यासी ने वहाँ आकर एक औषध

के प्रयोग द्वारा उनके जीवन को बचाया। थोड़ा स्वस्थ होने पर स्वामीजी कनखल, सहारनपुर आदि स्थानों में कुछ दिन तपस्या में बिताकर मेरठ आये।

स्वामी ब्रह्मानन्द, सारदानन्द, तुरीयानन्द, अखण्डानन्द, कृपानन्द और अद्वैतानन्द इन छः गुरु भ्राताओं को लेकर स्वामीजी मेरठ के सेठ के बाग में रहे। साधन भजन के अवकाश काल में वह गुरु भाइयों के साथ मृगच्छकटिक, अभिज्ञानशाकुन्तलम, कुमारसम्भव, मेघदूत आदि संस्कृत साहित्य-ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। फिर उपनिषद, वेदान्त आदि ग्रन्थों तथा पुराणादि का पाठ भी चलता था। स्थानीय अनेक विशिष्ट व्यक्ति भी उस धर्मालोचना में सम्मिलित होते थे। स्वामीजी जिस प्रकार एकान्त और निर्जन स्थान चाहते थे उसका क्रमशः अभाव होने लगा। उस समय से उनके भीतर एक विपुल आध्यात्मिक शक्ति का विकास देखकर उनके गुरुभाई विस्मित हुए। वह शक्ति मानो निर्गमन का पथ ढूँढ़ रही थी। गुरुभाइयों के साथ स्वामीजी मेरठ में तीन मास तक थे। उन्होंने अपने भीतर एक महाशक्ति के स्फुरण का अनुभव किया और अपने जीवन के महान कर्त्तव्य के सम्बन्ध में भी इंगित पाया। संकल्प में दृढ़ होकर एकदिन उन्होंने गुरु भाईयों से कहा—"मेरे जीवन का व्रत निश्चित हो गया है।...अब से मुझे अकेला ही रहना होगा। तुमलोग मेरा साथ छोड़ दो। मेरे साथ केवल भगवान् ही रहेंगे।

गुरु भाइयों का कोई भी अनुरोध उन्होंने नहीं सुना। १८९१ ई० के जनवरी मास के अन्त में वह अकेले ही निकल पड़े—परिव्राजक के रूप में। भारत के अगणित जनसमुदाय के भीतर वे खो गये। सैकड़ों संन्यासियों की तरह वह भी गेरुआ वस्त्र पहने एक संन्यासी मात्र थे।...दो वर्षों से अधिक समय तक वह भ्रमण ही करते रहे। भारत की धूल में उनके पदचिह्न विलीन हो गये। कभी ग्राम में तो कभी शहर में, कभी धनी के महल में तो कभी दरिद्र के झोपड़ी में, वृक्ष के नीचे या देवमन्दिर में, कभी वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण के सम्मानित अतिथि तो फिर कभी अस्पृश्यों को

कृतार्थ करने के लिए उनके सुखदुःख के भागी तो कभी राजा महाराजाओं के महल में माननीय संन्यासी गुरु के रूप में उच्चासन पर बैठे और राजा लोग उनके चरणों की सेवा करते रहे। वे उनके भोग-विलास-मत्त हृदय में ज्ञान का दीपक जला देते तथा संसार की अनित्यता का बोध तथा भूमानन्द में प्रतिष्ठित होने की तीव्र आकांक्षा उत्पन्न कर देते। उनके सुप्त चित्त में जन-सेवा की चेतना उद्‌बुद्ध कर देते थे। फिर हम उन्हें अत्यन्त निपीड़ित तथा सन्तप्त व्यक्तियों के मित्र रूप में—वेदना से कातर लोगों की सेवा में व्रती देखते हैं। दिन-दिन महाभारत का वास्तविक् रूप उनके अन्तर में उद्‌भासित हो उठा। उन्होंने देखा कैसे मनुष्यों के भीतर भगवान् विक्षुब्ध और क्लिष्ट हो रहे हैं। भारत के जनसाधारण का करुण आर्तनाद उनके मन को आलोड़ित करने लगा। अहो! वे कैसे निरुपाय और निःसहाय हैं।

छः

मेरठ छोड़कर दिल्ली गये। उसके अनन्तर स्वामीजी राजपूताना के रास्ते में अलवर राज्य में पहुँच गये। उसके बाद जयपुर में आकर वह दो सप्ताह तक रहे। उस समय वे एक प्रसिद्ध वैयाकरण से पाणिनीय का अष्टाध्यायी व्याकरण पढ़ने लगे। जयपुर में तथा अन्यत्र साधारण लोगों की दरिद्रता तथा असहाय अवस्था देखकर स्वामीजी का चित्त वेदना से भर गया। परन्तु ये लोग ही जाति के मेरुदंड, जाति के प्राण और भविष्य का भारत हैं। वह दुर्दशाग्रस्त लोगों की दयनीय अवस्था के प्रतिकार के लिए राजाओं तथा राजकर्मचारियों को उत्तेजित करने लगे।···वह गण-सम्वित् जाग्रत करने के लिए युवकों को उत्साहित करते थे। आचण्डाल सर्व श्रेणी की उन्नति के लिए वह अपने हृदय का शोणित बहाने लगे।··· निपीड़ित मनुष्यों के दुःख दारिद्रय के संस्पर्श में वह जितना ही आने लगे उतना ही उनके हृदय में जन-सेवा-व्रत रूप लेने लगा। मनुष्य की दुःख-वेदना को केन्द्रित करके उनकी सारी शक्ति तथा सभी प्रचेष्टा एकीभूत हो गई—मनुष्यरूपी नारायण की सेवा के लिए। उन्होंन कहा था—"मैं

एक ऐसा धर्म चाहता हूँ जो हमलोगों में आत्मविश्वास तथा जातीय मर्यादाबोध जगाने और जनगण को अन्न, वस्त्र और शिक्षा देने, हमारे चारों ओर की सभी दुःख वेदनाओं को दूर करने की शक्ति ला दे।···यदि भगवान् को लाभ करना चाहते हो तो मनुष्य की सेवा करो।"

जन-सेवा-व्रत में उन्होंने अपने हृदय की सारी शक्ति को लगा दिया था। समस्त विश्व के दरिद्रों के हृदय विदीर्ण करनेवाले आर्तनाद की प्रतिध्वनि उन्हें अपने अन्तर में सुनाई पड़ने लगी। इसी कारण वह सर्वत्र नररूपी नारायण की सेवा का मन्त्र सुनाने लगे। भारत के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक सभी को नरनारायण के सेवा-व्रत में अनुप्राणित करने लगे। वाद में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के उदार हृदय में स्वामीजी की वाणी ने कैसा प्रभाव डाला था, उसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार से किया है "स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि—प्रत्येक मनुष्य के भीतर ब्रह्म की शक्ति है, और भी कहा था—दरिद्र नारायण के भीतर नारायण ही हमारी सेवा पाना चाहते हैं। इसी को वाणी कहते हैं। यह वाणी स्वार्थ के परे मनुष्य को असीम मुक्ति का पथ दिखाती है। यह तो किसी विशेष आचरण का उपदेश नहीं, व्यवहारिक संकीर्ण अनुशासन भी नहीं। छुआछूत का विरोध इसमें अपने आप आ गया है। इससे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का सुयोग हो सकता है इस कारण नहीं, वल्कि इसलिए कि उससे मनुष्य का अपमान अपसारित होगा। वह अपमान तो प्रत्येक का आत्मापमान है।"

स्वामी विवेकानन्द की यह वाणी संपूर्ण मनुष्य जाति के उद्बोधक होने के कारण कर्म के मार्ग से मुक्ति के पवित्र पथ पर हमारे युवकों को अग्रसर करा रही है (रामकृष्ण मिशन शिक्षण मंदिर, वेलूड़ मठ द्वारा १९६१ ई० में प्रकाशित संदीपन संख्या २, पृष्ठ ३२)।

व्यवहारिक क्षेत्र में और दैनिक जीवन में स्वामीजी की इस वाणी के प्रयोग के भीतर निहित है—सामूहिक एकता तथा विश्वभ्रातृत्व का वीज। इसी मंत्र के वल उन्होंने भविष्य भारत को आह्वान किया था।

❀ ❀ ❀ ❀

स्वामीजी परिव्राजक रूप से चल रहे थे। जयपुर के बाद अजमेर और वहाँ से वह आबू पहाड़ पर आये। वहाँ के रमणीय प्राकृतिक दृश्यों के भीतर त्रयोदश शताब्दी में आठ करोड़ रुपयों से निर्मित अनुपम कारु-शिल्प-मण्डित जैन मन्दिर आदि का उन्होंने दर्शन किया।··'आबू में रहते समय खेतड़ी के महाराजा तथा अन्यान्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ स्वामीजी का परिचय हुआ। उनके गंभीर पाण्डित्य, आध्यात्मिक अनुभूति और ज्ञानगर्भ उपदेश से विमुग्ध होकर खेतड़ी के महाराजा कुछ दिनों के अनन्तर स्वामीजी को साथ लेकर अपने राज्य में लौट आये और परम श्रद्धा के साथ उनकी सेवा करने लगे। कुछ दिनों के बाद उन्होंने स्वामीजी से दीक्षा ली।

स्वामीजी खेतड़ी में कुछ सप्ताह रहे। राजमहल में भी वह सर्वत्यागी संन्यासी का जीवन ही विताते थे। खेतड़ी के निवासकाल साधना, स्वाध्याय और शिक्षा-दान में पूर्ण थे। राजा के सभा-पण्डित नारायणदास जी समस्त राजपूताना में अद्वितीय वैयाकरण थे। इसी मौके से स्वामीजी उनसे पातञ्जलि महाभाष्य का अध्ययन करने लगे। दो-एक दिनों के भीतर ही स्वामीजी की असाधारण प्रतिभा से मुग्ध होकर पण्डितजी ने कहा—"स्वामीजी, आपके समान विद्यार्थी मिलना दुर्लभ है।"

खेतड़ी के राजा पुत्र-हीन थे। उन्होंने एकदिन पुत्र-लाभ के लिए विनय के साथ गुरुदेव का आशीर्वाद-प्रार्थी होकर एक पुत्र की कामना की। राजा की कातरता देखकर उन्होंने दिल खोलकर आशीर्वाद दिया। सत्य-संकल्प, ब्रह्मज्ञ महापुरुष का वरदान निष्फल नहीं हुआ। दो वर्षों के भीतर ही राजा को एक पुत्ररत्न का लाभ हुआ।···

स्वामीजी केवल राजमहल-निवासी ही नहीं थे। वे प्रजाओं के सुख-दुःख के भागी भी थे। राजपूताना के विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते समय गरीबों की दारुण दुर्दशा के साथ वह विशेषरूप से परिचित हुए थे और उसके प्रतिकार के लिए उन्होंने प्रयत्न भी किया था। उन्होंने राजा-महाराजाओं के चित्त में जनसेवा का भाव जागृत किया था। स्वामीजी

के उपदेश से अनुप्राणित होकर खेतड़ी के राजा ने अपने राज्य में जनता की उन्नति के लिए अनेक प्रकार के प्रवन्ध किया। राजाओं के हाथ में शक्ति थी, धन-वल भी था, इसी कारण वह उन लोगों के मन में परिवर्तन लाने के लिए उनसे मिले थे। जहाँ कहीं भी वह गये, धनिकों से गरीबों के लिए निवेदन किया। किन्तु उन्होंने यह भी समझा था कि दो-चार राजा-महाराजाओं की दान-शीलता और सदिच्छा से भारत के व्यापक दुःख-दारिद्रय का वहुत अल्प ही प्रतिकार हो सकता है। स्वामीजी के पाश्चात्य देशों में जाने की योजना के पीछे वहुत कुछ भारत का दुःख-विमोचन भी था। उन्होंने किसी समय कहा था—"मैंने सारे भारत में भ्रमण किया है।···सभी जगह साधारण लोगों का भयानक दुःख-कष्ट अपनी आँखों से देखा है। देखकर मैं वेचैन था। आँख के आँसू नहीं रुकते थे।···इसी कारण जनसाधारण की मुक्ति का कोई उपाय खोजने के लिए ही मैं अव अमेरिका चल रहा हूँ।"

स्वामीजी जिस भिक्षा की झोली लिये अपने दरिद्र स्वदेशवासियों के लिए धन और सहायता के प्रार्थी होकर धन-कुवेरों के देश में गये थे, वह झोली उस समय पूर्ण न होने पर भी उनकी प्रार्थना व्यर्थ नहीं हुई। उन्होंने मानवता की एकता तथा विश्व-भ्रातृत्व का आवेदन किया था, उनके मुख से मनुष्यों के निकट दीन आर्त लोगों के लिए सहानुभूति के वाक्य प्रार्थना के स्वर से निकले थे। वर्तमान में प्राच्य के अनुन्नत देशों के लिए पाश्चात्य से जो अपरिमित सहायता आ रही है स्वामीजी का आवेदन उसका मूल कारण है। उसमें दाताओं के मन में राजनीतिक उद्देश्य रह सकता है, किन्तु प्राच्य के अगणित नर-नारियों का उससे विशेष उपकार हो रहा है, उसे अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। उन्होंने मानव जाति के अन्तर में जिस विश्व-मानवता का वीज वोया था वह श्रीरामकृष्णदेव के जीवन-सलिल में आर्द्र था। इसी कारण वह वीज कभी नष्ट नहीं हो सकता।

❀ ❀ ❀ ❀

खेतड़ी के राजा की कातर प्रार्थना पर ध्यान न देकर स्वामीजी उनकी राजधानी छोड़ गुजरात की ओर चल पड़े। अहमदावाद, लीमडी, जूनागढ़, गिरनार, भूज, भेरावल और सोमनाथपत्तन (प्रभास) होकर स्वामीजी पोरवन्दर (सुदामापुरी) आये।

पोरवन्दर के महाराजा के साथ स्वामीजी का परिचय इतने अधिक घनिष्ठ भाव से हो गया था कि स्वामीजी आठ-नौ महीने तक राजमहल में ही थे। इस प्रकार दीर्घकाल तक वहाँ रहने का विशेष कारण भी था। राजा के सभा-पण्डित शङ्कर पाण्डुरङ्ग अद्वितीय विद्वान् थे। उस समय वह वेद का अनुवाद कर रहे थे। अनुरोध करने पर स्वामीज़ी अनुवाद के कार्य में उन्हें सहायता देते थे और उनसे स्वामीजी महाभाष्य का अध्ययन भी करते थे। केवल इतना ही नहीं, उन्होंने पण्डितजी से फ्रांसिसी भापा की शिक्षा भी ली।

वेद के अनुवाद के समय उनकी अद्‌भूत् प्रतिभा तथा वुद्धिमत्ता का परिचय पाकर पण्डित जी ने कहा था—"स्वामीजी, आपकी प्रतिभा और शक्ति की मर्यादा देने योग्य व्यक्ति इस देश में विरले ही है।··· मुझे प्रतीत होता है कि वर्तमान भारत आप के योग्य क्षेत्र नहीं है। आप पाश्चात्य देशों में जाइये और उन देशों में आग जला आइये। तव देखियेगा इस देश का हर एक आदमी आप की वात से उठेगा और बैठेगा। आप आँधी के वेग से पाश्चात्य देशों पर आक्रमण कीजिये और उस देश को विजय कर लौट आइये।"

स्वामीजी कुछ क्षण मौन रहकर बोले—'पण्डितजी, एकदिन मैं प्रभास के समुद्रतट पर खड़े होकर दूर क्षितिज पर दृष्टि रखकर तरङ्गमाला की अनुपम लीला देख रहा था। एकाएक मेरे मन में विचार उठा कि इस विक्षुब्ध तरङ्गमालाओं का अतिक्रमण कर मुझे किसी दूर देश में जाना होगा, परन्तु वह कैसे संभव होगा; वह समझ में नहीं आता।"

पोरवन्दर से द्वारका, और वहाँ से माण्डवी, नारायण सरोवर, आशा-पुरी और पालिताना का शत्रुञ्जय पर्वत आदि का दर्शन कर स्वामीजी

वड़ौदा होकर खण्डवा में आये। दैवयोग से वहाँ वकील हरिदास चट्टोपाध्याय महाशय के साथ परिचय होने से उनके घर में स्वामीजी तीन सप्ताह रहे। शिकागो धर्म महासभा के विषय में सुनकर खण्डवा ही में उनके मन में पहले-पहल उस सम्मेलन में योगदान करने की इच्छा उत्पन्न हुई। हरिदास वावू के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था—"यदि कोई जाने-आने का खर्चा दे तो वहाँ जाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" उस धर्म महासभा के लिए स्वामीजी पहले से ही विधाता के द्वारा निर्वाचित हो गये थे। उसे हम आगे देखेंगे। स्वामीजी भी भगवान् के इशारे से रामेश्वर की ओर अग्रसर होते चले गये।

ये भ्रमण के दिन उनके लिए महान् शिक्षा के दिन थे। वे केवल सीखते ही गये और लिया भी वहुत कुछ। गोताखोर की तरह भारत महादेश के रत्नों का आहरण भी यथेष्ट किया था। धर्मभूमि भारत की जो चिन्ता-धारायें चारों ओर फैली हुई थीं, उन्हें उन्होंने संग्रह कर लिया। उन्हें धर्म के भीतर शाश्वत ऐक्य मिल गया। विभिन्न धर्मों के मूल स्थान का सन्धान भी उन्हें मिल गया। समाज के स्रोत की पंकिल अवस्था भी उन्होंने वेदना-पूर्ण हृदय से देखी। उस रुद्ध स्रोत को गतिशील और निर्मल करने का पथ भी उनके अन्तर में साकार हो रहा था। सबसे अधिक अपने देश के लोगों की दरिद्रता और अज्ञानता ने उनके हृदय को अस्थिर कर डाला। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे—"खाली पेट धर्म नहीं होता।" उस वात की सत्यता का उन्होंने अपने हृदय के अन्तस्तल में अनुभव किया। इन सभी की प्रतिकार-चिन्ता ने उनके अन्तःकरण में आग लगा दी। दिन-रात किसी भी समय वह उस चिन्ता से अपने को मुक्त नहीं कर सके। यहाँ तक की निद्रा के समय भी वे चिन्तायें उनके मन में जागृत रहती थीं।

खण्डवा के अनन्तर वम्वई और पूना। पूना के रास्ते में गाड़ी के भीतर एक चमत्कारी घटना ने स्वामीजी के विराट व्यक्तित्व का परिचय दिया। उस ट्रेन में एक ही कमरे के भीतर कुछ मराठी शिक्षित सज्जन स्वामीजी को दूसरे दर्जे में चलते देखकर अंग्रेजी में संन्यासियों की निन्दा

करने लगे। उनकी धारणा थी कि संन्यासी अंग्रेजी नहीं जानते। उनके मत से भारत के अधःपतन के लिए संन्यासी सम्प्रदाय ही उत्तरदायी है। पर-जीवी की तरह वे समाज-वृक्ष की शक्ति का शोषण कर, समाज को मृतप्राय वना रहे हैं, इत्यादि। उस कमरे में लोकमान्य वालगंगाधर तिलक भी थे, परन्तु उन्होंने सहयात्रियों के मत का समर्थन नहीं किया था।

आलोचना जव चरम सीमा पर पहुँची तव स्वामीजी चुप नहीं रह सके। उन्होंने धीरे-धीरे वोलना प्रारम्भ कर दिया—"हर एक युग में संन्यासियों ने ही संसार की आध्यात्मिक भाव-धारा को सतेज और अक्षुण्ण रखा है। वुद्ध क्या थे? शङ्कर ने क्या किया? उनकी आध्यात्मिक शिक्षा को भारत अस्वीकृत नहीं कर सकता।" क्रमशः उनके मुख से गम्भीर दार्शनिक तत्त्व, धर्म का क्रम-विकास तथा विभिन्न देशों में धर्म की प्रगति के इतिहास को सुनकर सहयात्री लोग सिर झुकाने को वाध्य हुए। इस आलोचना से मोहित होकर तिलक महाराज ने स्वामीजी को आग्रहपूर्वक अपने घर ले जाकर प्रायः एक मास तक रखा था। अनेक धर्म-पिपासु लोग उनके दर्शन तथा सदालाप श्रवण के लिए समागत होते थे। स्वामीजी धर्म के जटिल तत्त्वों को सहज, पर मौलिक प्रणाली से वहुत सुन्दरता के साथ समझा देते थे। इसके अतिरिक्त जड़ विज्ञान, ज्योतिष, समाज-तत्त्व, अर्थ-नीति आदि के सम्वन्ध में उनकी विचारशक्ति, सवसे ऊपर स्वदेश प्रेम तथा गरीवों के प्रति समवेदना लोगों की श्रद्धा आकृष्ट करती थी।

क्रमशः कोल्हापुर, मारमागोवा और वेलगाँव होकर वह मैसूर आये। उस राज्य के दीवान सर के० शेषाद्रि अय्यर स्वामीजी के साथ वार्तालाप करके एकदम मुग्ध हो गये। उन्होंने स्वामीजी को अपने मकान में एक मास से अधिक समय तक आदर के साथ रखा। उस समय मैसूर के अनेक शिक्षित और उच्चपदस्थ व्यक्ति उस तरुण यति के प्रति आकृष्ट हुए थे। क्रमशः मैसूर के महाराजा श्रीचामराजेन्द्र वाडियार के साथ भी स्वामीजी का परिचय हुआ। तरुण आचार्य के गुणों से मुग्ध होकर महाराजा ने स्वामीजी को राज अतिथिरूप से अपने महल में रखा। एकदिन महल में

पण्डित-मण्डली की एक सभा वुलायी गयी। पण्डितों के भाषण के अनन्तर अनुरोध करने पर स्वामीजी ने अपनी अनुभूति से प्राप्त वेदान्त के निगूढ़ तत्त्व तथा जीवन में उसके प्रयोग के सम्बन्ध में ऐसा हृदयस्पर्शी भाषण दिया कि चारों ओर से धन्यवाद की वर्षा होने लगी।

एकदिन महाराजा ने स्वामीजी को अपने कमरे में वुलाकर कहा-- ...तिवर, मैं आप की सेवा करना चाहता हूँ। उसका अधिकार देकर मुझे ...तार्थ कीजिये।" स्वामीजी ने अपने जीवन का उद्देश्य व्यक्त कर कहा-- "देश का काम ही मेरा काम है, दरिद्रों की सेवा ही मेरी सेवा है। आप देश की सेवा कीजिये। देश को उन्नत तथा समृद्ध कर डालिये। उसी से मैं प्रसन्न हूँगा। आप राजा हैं साधारण लोगों की उन्नति करने की शक्ति तथा सामर्थ्य आप में है। गरीवों की गरीवी और अज्ञानता दूर कीजिये।" स्वामीजी अपने हृदय के आवेग से प्राच्य और प्रतीच्य सभ्यताओं तथा भावों के आदान-प्रदान के लिए पाश्चात्य देशों में वेदान्त की वाणी ले जाने की इच्छा रखते हैं, यह जानकर महाराजा ने आनन्द से सारा खर्च देने का प्रस्ताव किया, किन्तु स्वामीजी ने कहा, "नहीं, अभी समय नहीं आया है। श्रीभगवान् के आदेश के लिए मुझे प्रतीक्षा करनी होगी।"

राजा स्वामीजी पर गुरु के समान श्रद्धा रखते थे। एकदिन उन्होंने कहा--"स्वामीजी, मैं आप के चरणों की पूजा करूँगा।" किन्तु स्वामीजी किसी तरह राजी न हुए। अनेक मूल्यवान् उपहार देना चाहा। उनमें से भी उन्होंने कुछ नहीं लिया। उन्होंने कहा--"राजन्, मैंने प्रण कर लिया है कि परिव्राजक की अवस्था में धन का स्पर्श नहीं करूँगा और न कुछ संचय ही रखूँगा। मैं साधारण संन्यासी हूँ। उपहार लेकर मैं क्या करूँगा और कहाँ रखूँगा?"

❀ ❀ ❀ ❀

मैसूर के वाद कोचीन होकर स्वामीजी त्रिवेन्द्रम् (वर्तमान केरल) में आये। यहां एक अध्यापक के यहाँ अतिथि होकर रहे। यहाँ भी विद्वत्-समाज स्वामीजी के प्रति आकृष्ट हुआ। त्रिवांकुर के एस० के० नायर ने

लिखा है—"स्वामीजी के साथ जो लोग घनिष्ठ भाव से मिले, वे उनके अलौकिक शक्ति से आकृष्ट हुए विना नहीं रह सके। एक ही साथ अनेक व्यक्तियों के विविध प्रश्नों का उत्तर देने की उनमें विशेष दक्षता थी। स्पेन्सर, शेक्सपीयर, कालिदास, डारविन का विकासवाद, यहूदी जाति का इतिहास, आर्यसभ्यता की उत्पत्ति और क्रमविकास या वेद-वेदान्त, मुसलमान या ईसाई धर्म-शास्त्र भी किसी विषय में उन्हें पीछे हटते नहीं देखा जाता था। कोई भी प्रश्न क्यों न हो, उसका ठीक उत्तर उनके मुख पर लगा ही रहता था। उनके चेहरे पर सरलता और महत्त्व स्पष्ट प्रतीत होते थे। निर्मल हृदय, तपस्यापूर्ण जीवन, उदार बुद्धि, उन्मुक्त चित्त, असंकीर्ण दृष्टि और सारे प्राणियों के प्रति सहानुभूति ही उनके चरित्र की विशिष्टता थी।"

स्वामीजी रामेश्वर की ओर अग्रसर होते चले। रास्ते में मदुरा में रामनाद के राजा भास्कर सेतुपति के साथ उनकी भेंट हुई। थोड़े ही दिनों के भीतर उस उच्च-शिक्षित राजा ने स्वामीजी के प्रति विशेष श्रद्धा-सम्पन्न होकर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। परन्तु स्वामीजी राज-सम्मान प्राप्त करने के लिए नहीं आये थे। उन्होंने वर्तमान भारत की समस्याओं तथा उनके समाधान के प्रति राजा की दृष्टि आर्कषित की। उन्होंने जनसाधारण की उन्नति का भार राजा के ऊपर लाद दिया।···

रामेश्वर दर्शन के अनन्तर स्वामीजी भारत के अन्तिम प्रान्त कन्या-कुमारी के मन्दिर में गये। देवी दर्शन से उनका अन्तर पुलकित हो उठा। उन्होंने साष्टाङ्ग दण्डवत करके कहा—"जननी, मैं मुक्ति नहीं चाहता। आपकी सेवा ही मेरे जीवन का एकमात्र व्रत है।"

अन्तर में सैकड़ों चिन्ताओं को लेकर स्वामीजी कन्याकुमारी के एक शिलाखण्ड पर बैठकर गम्भीर ध्यान में मग्न हो गये। उनके ध्यानाव-गाही चित्त में अतीत भारत के उत्थान-पतन और भविष्य-भारत के सात आठ सौ वर्षों का उज्ज्वल चित्र उद्भासित होने लगा। उन्हें नया प्रकाश मिला और मिला पथ का अनुसन्धान। अन्तर में श्रीरामकृष्णदेव का शब्द

सुनाई पड़ा। लाखों दरिद्र भारतवासियों के प्रतिनिधि रूप में उन्होंने पाश्चात्य देशों में जाने का संकल्प किया। वहाँ जाकर पाश्चात्य-देशवासियों की दृष्टि भारत के प्रति आकृष्ट करेंगे, विश्व-मानवता तथा विश्व-भ्रातृत्व की वाणी का वहाँ प्रचार करेंगे। सुप्त मानवात्मा को संबुद्ध करेंगे तथा भारत के दुःख-दारिद्रय के अवसान की चेष्टा करेंगे।

कन्याकुमारी के वाद पाण्डिचेरी गये। थोड़े ही समय में वहाँ के कुछ शिक्षित युवक स्वामीजी के प्रति विशेपरूप से आकृष्ट हुए। एक विद्वान् ब्राह्मण के साथ समुद्र-यात्रा और संसार भर में वैदिक धर्म के प्रचार के सम्वन्ध में वड़ी ही कौतुक-जनक आलोचना हुई। स्वामीजी ने कहा—"समुद्र-यात्रा के सम्वन्ध में शास्त्र में कोई निषेव नहीं है।" इसपर ब्राह्मण ने क्रोध में आग-ववूला होकर कहा—"कदापि न, कदापि न—कभी नहीं हो सकता। म्लेच्छ धर्म क्या समझेंगे? उनके संस्पर्श से केवल अपनी ही जाति नष्ट हो जायगी।"

ब्राह्मण की संकीर्णता का स्वामीजी ने हँसते हुए उपभोग किया। उन्होंने साथियों से कहा—"तुम लोगों ने देखा न? हिन्दू धर्म कहाँ जा पड़ा है। सनातन वैदिक धर्म को अव व्यक्ति और सम्प्रदाय की सीमा से मुक्त करके विश्व के प्रशस्त प्रांगण में स्थापित करना होगा और हर एक शिक्षित युवक के ऊपर इसका गुरुतर दायित्व अर्पित है।"···उन्होंने और भी कहा—"जिस दिन म्लेच्छ शव्द का आविष्कार हुआ और विभिन्न देशों के लोगों के साथ सम्वन्ध विच्छिन्न हुआ, उसी दिन से भारत का भाग्य-विपर्यय शुरू हुआ।"···

स्वामीजी के मद्रास पहुँचते ही शहर में हलचल मच गयी। विश्व-विद्यालय के अध्यापक और छात्र दल के दल आने लगे। स्वामीजी के ज्ञान की गंभीरता को देखकर सभी लोग चकित रह गये। चारों वेदों से आरम्भ करके वेदान्त दर्शन के उच्चतम दार्शनिक विचार तथा आधुनिक काँट, हेगेल, शिल्पकला, काव्य, संगीत-विद्या, नीतिशास्त्र, योग-शास्त्र, विज्ञान के नूतनतम आविष्कार, राजनीति, समाजनीति—सभी विषयों में उनका

विशेष पांडित्य देखकर लोग आश्चर्य-चकित हो गये। एक प्रत्यक्षदर्शी का वर्णन इस प्रकार है—"कलकत्ता विश्वविद्यालय का एक स्नातक मुण्डित-मस्तक, मनोहररूप-सम्पन्न, गैरिक-वसन-धारी, संन्यासी, अंग्रेजी और संस्कृत अनायास बोलने में अभ्यस्त, हरएक प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर देने की शक्ति, संगीत विद्या में ऐसा निपुण कि कण्ठ से अति सहज में मधुर सुर निकलकर समस्त ब्रह्माण्ड के अन्तरात्मा के साथ उन्हें मिला देता है। परन्तु दूसरी ओर वह सर्वत्यागी निःसम्बल परिव्राजक मात्र, बलिष्ठ, साहसी, उच्चकोटि के परिहास-कुशल पुरुष, ऐसे संन्यासी जो अनेक व्यक्तियों के हृदयों में अविनाशी विश्वास का अनल जला देते हैं।"....

उनके पास बालक, युवा, वृद्ध, पंडित, मूर्ख, धनी, दरिद्र, उच्चपदस्थ व्यक्ति, फिर हिन्दू, ईसाई, नास्तिक, सभी तरह के लोग आते थे। एकदिन उन्होंने आलोचना-प्रसङ्ग में अपने पाश्चात्य देशों में जाने की इच्छा प्रकट करते हुए कहा—"अब वैदिक धर्म का समस्त जगत् के निकट प्रचार करने का समय आया है। ऋषियों के इस महान् धर्म को अब संकीर्ण सीमा के भीतर बाँध रखने से काम नहीं चलेगा। उसे पुनःसंस्कार करके संसार के सामने रखना होगा और पूर्ण उद्यम से इस धर्म की महिमा का चारों ओर प्रचार करना होगा।" स्वामीजी ने वैसा ही किया था। वेदान्त धर्म की रत्न-मंजूषा खोलकर उन्होंने उदार हाथों से उन रत्नों को वितरित कर दिया। पृथ्वी के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक उन्होंने वेदांत की महिमा घोषित कर दी।...

स्वामीजी की पाश्चात्य देश जाने की इच्छा जानकर मद्रास के भक्त लोग धन संग्रह करने लग गये। थोड़े समय के भीतर ५००) रुपये इकट्ठे हुए। स्वामीजी उन रुपयों को देखकर उत्फुल्ल नहीं हुए। उन्होंने कहा—"मेरे प्यारे बच्चों, मैं अन्धकार में उछल पड़ने के पूर्व श्रीभगवान् की इच्छा जानना चाहता हूँ। यदि मेरा पाश्चात्य गमन उनको अभिप्रेत हो तो धन अपने आप आ जायगा। तुम इन रुपयों को गरीबों में बाँट दो।"

वे रुपये गरीबों में बाँट दिये गये। ...स्वामीजी प्रार्थना-रत होकर श्रीभगवान् के आदेश की प्रतीक्षा करने लगे। ठीक उसी समय एक रात को उन्होंने स्वप्न में देखा—'श्रीरामकृष्णदेव ज्योतिर्मय शरीर में समुद्रतीर से जल के ऊपर से अग्रसर होते आ रहे हैं और स्वामीजी को उनके पीछे आने के लिए संकेत कर रहे हैं। दूसरे ही क्षण निद्राभङ्ग होने पर एक अनिर्वचनीय आनन्द से उनका हृदय भर गया। साथ ही साथ दैव-वाणी सुनायी पड़ी "जाओ।"

श्रीरामकृष्णदेव की इच्छा जानकर उन्होंने पाश्चात्य देश जाने का दृढ़ संकल्प कर लिया।···दो ही चार दिनों के भीतर समुद्र-यात्रा का सारा प्रवन्ध हो गया···।

दो साल पहले खेतड़ी के राजा को पुत्र लाभ के लिए स्वामीजी ने आशीर्वाद दिया था। राजा को एक पुत्ररत्न का लाभ हुआ। राजा के विशेष अनुरोध से उन्हें राजपुत्र को आशीर्वाद देने के लिए खेतड़ी जाना पड़ा। राजा, राजपुत्र तथा अन्यान्य सभी को आशीर्वाद देकर स्वामीजी जहाज पकड़ने के लिए वम्वई की ओर चले। राजा की इच्छा से उनके प्राइवेट सेक्रेटरी जगमोहन लाल उन्हें जहाज पर सवार कराने के लिए वम्वई तक आये। मद्रास से स्वामीजी के प्रिय शिष्य आलासिंगा पेरूमल भी आये। पी० एण्ड ओ० कम्पनी के पेनिन्सुलार जहाज के प्रथम श्रेणी का टिकट खरीदा गया। १८९३ ई० के ३१ मई को जहाज रवाना हुआ। * जगमोहन लाल तथा आलासींगा पेरूमल उन्हें जहाज पर सवार करा देने

---

* स्वामी विवेकानन्द की समुद्र-यात्रा एक विशेष गुरुत्वपूर्ण घटना है। उस सम्वन्ध में १९०९ ई० में श्रीअरविन्द ने अपने 'कर्मयोगिन्' पत्रिका में लिखा था—"···विवेकानन्द की समुद्र-यात्रा से सवसे पहले यही सूचित होता है कि भारत केवल जीवित रहने के लिए जगा नहीं है, वल्कि आध्यात्मिक सिद्धान्तों के प्रचार द्वारा संसार पर विजय प्राप्त करने के लिए भारत को प्रशंसनीय भूमिका ग्रहण करनी होगी।"

के लिए आये थे। दोनों रोने लगे। स्वामीजी की आँखें भी डबडबाईं। मातृभूमि के आकर्षण ने उन्हें व्याकुल कर दिया था। डेक पर खड़े होकर दोनों हाथ छाती पर रखकर उन्होंने अपने हृदय के आवेग को दबाने की चेष्टा करते हुए कहा--"हाय मेरा भारतवर्ष!"

सात

डेक पर खड़े होकर वह भारत की तटभूमि की ओर एकटक देखते रहे। उनका प्यारा भारतवर्ष! हाय, पराधीन परपद-दलित भारतभूमि! भारत की सैकड़ों चिन्ताओं ने उनके अन्तर पर अधिकार जमा लिया। जहाज बम्बई से सिलोन, पीनांग, सिंगापुर और हांगकांग के मार्ग पर अग्रसर होता चला। उसके बाद कैण्टन, नागासाकी, ओसाका, किओटो और टोकियो होकर वह स्थलपथ से योकोहामा आये। सुदूर प्राच्य के देशों के ऊपर प्राचीन आर्यसभ्यता का प्रभाव कहाँ तक पड़ा था--इसे वह विशेष रूप से लक्ष्य करते आये थे। एशिया के आध्यात्मिक ऐक्य के सम्बन्ध में भी वह एक स्थिर सिद्धान्त पर पहुँचे थे। जापान के वर्तमान युगोपयोगी सर्वतोमुखी उन्नति ने उनकी दृष्टि को विशेष रूप से आकर्षित किया था। कुछ सालों के भीतर स्वाधीन जापान ने पाश्चात्य जातियों के साथ होड़ में अत्यधिक उन्नति कर ली है। उन दिनों थोड़े से जापानी ४० करोड़ चीनियों के विरुद्ध लड़कर विजयी बने थे। उसमें उनके आत्मविश्वास और संहति-शक्ति के कारण ही उनकी जय घोषित हुई। स्वामीजी ने यह भी कहा था कि "सामयिक भाव से जापान के हाथ चीनियों की पराजय होने पर भी समय आ रहा है कि चीन भी एक विशाल विश्व-शक्ति बन जायगा। रूस भी प्रचण्ड शक्तिशाली होगा।" चीन और रूस के भविष्य के बारे में स्वामीजी की भविष्यवाणी अक्षरशः सत्य हो रही है और पाश्चात्य यान्त्रिक सभ्यता सारे विश्व को ध्वंस के पथ पर ले जायगी इसे भी उन्होंने स्पष्ट रूप से प्रकट किया था।...

साथ-साथ मातृभूमि के व्याधियों के विषय में सोचकर उनका हृदय

विशेष रूप से भाराक्रान्त हो गया था। योकोहामा से मद्रासी शिष्यों को उन्होंने लिखा था--"जापानियों के सम्वन्ध में मेरे मन में कितनी वातों का उदय हो रहा है उसे एक छोटे पत्र में प्रकाशित करना सम्भव नहीं है।...किन्तु तुम लोग क्या कर रहे हो ? जीवन भर वृथा वक वक करते रहते हो। आओ, इन्हें देख जाओ, उसके वाद लज्जा से मुँह छिपा लेना। भारत की मानो जराजीर्ण अवस्था हो गयी है। देश छोड़कर वाहर जाने से तुम्हारी जाति नष्ट होती है, ऐंसे ही तुम मूर्ख हो।...

"आओ, मनुष्य वनो। अपने संकीर्ण गर्त से वाहर निकल आकर देखो--अन्य जातियाँ किस प्रकार उन्नति के पथ पर अग्रसर होती जा रही हैं। क्या तुम लोग मनुष्य-जाति को प्यार करते हो! देश के प्रति प्रेम रखते हो। तो आओ, उन्नति के लिए, शक्ति बढ़ाने के लिए, जी जान से प्रयत्न करो। ...

"भारतमाता कम से कम हजारों युवकों की वलि चाहती है। याद रखो--मनुष्य चाहिये, पशु नहीं। प्रभु ने तुम्हारी इस निर्जीव सभ्यता को तोड़ने के लिए ही अंग्रेज राज-शक्ति को इस देश में भेजा है।"

योकोहामा से स्वामीजी जहाज द्वारा प्रशान्त महासागर की नीलाम्वुराशि का अतिक्रमण कर १६ जुलाई (१८९३ ई०) को कनाडा राज्य के वंकुवार वन्दर में उतरे। उसके अनन्तर ट्रेन से अमेरिका के अन्यतम विशाल महानगरी शिकागो आये। परिचित मनुष्य या कोई परिचय पत्र उनके पास नहीं था। इस कारण लाचार होकर एक होटल में आश्रय लेना पड़ा। उन्होंने १२ दिन तक विस्मय-विह्वल चित्त से शिकागो की विश्व-प्रदर्शनी देखी। विदेशों से आये हुए लाखों मनुष्यों की हलचल! सव कुछ ही नया प्रतीत हुआ। पाश्चात्यों देशों के धन, ऐश्वर्य और उद्भावना शक्ति के सम्वन्ध में उनकी धारणा वहुत सीमित थी। विज्ञान के कितने ही अभिनव आविष्कार, कितने ही विचित्र यन्त्र, कितने ही पण्य-संभार, धन-कुवेरों के देशों में शिल्पकला की कितनी उन्नति!...साथ-साथ भारत की दीनता की वात याद आते ही उनका हृदय दुःख-वेदना से भाराक्रान्त हो गया।

प्रदर्शनी के अनुसन्धान कार्यालय में जाने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि आगामी सितम्बर में धर्म-महासभा होगी। उतने दिनों तक होटल में रहने का खर्च नहीं था। उत्तम परिचय पत्र न होने पर कोई धर्मसभा का प्रतिनिधि नहीं हो सकता। उसके अतिरिक्त प्रतिनिधि निर्वाचन की अन्तिम तिथि भी बीत गई थी। सभी बातें निराशाजनक थीं। किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर उन्होंने मद्रासी शिष्यों के पास सहायता के लिए केवल (समुद्री तार) भेजा और सारी स्थिति जताकर पत्र लिखा।...उन्होंने निश्चय किया कि कैसे ही क्यों न हो अन्त तक प्रयत्न करेंगे। उन्होंने श्रीभगवान् का आदेश पाया था।

शिकागो के होटल में खर्च अधिक था। उन्हें खबर मिली कि 'बोस्टन' में खर्च कम है। वह बोस्टन चल पड़े।...स्वामी विवेकानन्द जहाँ भी जाते थे अनेक की दृष्टि आकृष्ट कर लेते थे। रास्ते में ट्रेन के भीतर ब्रिजी मेडोज की एक धनी महिला के साथ परिचय हुआ। वह स्वामी जी के गुणों से आकृष्ट होकर उन्हें निमंत्रण देकर अपने घर ले गयी।

उस भद्रमहिला के परामर्श से स्वामीजी ने उस देश के पादरियों की तरह एक पोशाक बनवा ली।...वहाँ एक महिलाओं की बड़ी सभा में भाषण देने के लिए स्वामीजी को निमंत्रण मिला। क्रमशः अनेक विशिष्ट पुरुषों के साथ परिचय हुआ। हावर्ड विश्वविद्यालय के ग्रीक भाषा के अध्यापक जे० एच० राइट प्रथम दिन के चार घण्टे के वार्तालाप से ही इस भारतीय तरुण संन्यासी की प्रतिभा से इतने अधिक मुग्ध हुए कि उन्होंने स्वामीजी के धर्म महासभा में योगदान की व्यवस्था का भार लेकर प्रतिनिधि-निर्वाचन-सभा के प्रेसीडेण्ट को लिखा—"यह ऐसे एक विद्वान् व्यक्ति हैं कि हम सभी अध्यापकों की विद्वत्ता एकत्रित करने पर भी उनके समान नहीं होती।" केवल इतना ही नहीं उन्होंने स्वामीजी के लिए शिकागो तक का एक टिकट खरीद दिया तथा धर्मसम्मेलन के अध्यक्ष के नाम एक पत्र देकर उन्हें वहाँ भेज दिया।...यह मानो पहले से ही ईश्वर-निर्धारित व्यवस्था थी।...

नयी आशा लेकर स्वामीजी शिकागो रवाना हुए। ट्रेन रात को पहुँची। कहाँ जायँ? क्या करें? कमेटी के कार्यालय का पता भी खो गया था। किसी से कुछ भी सहायता नहीं मिली। लाचार होकर स्टेशन के एक कोने में एक खाली वक्से के अन्दर आश्रय लेकर असह्य शीत से उन्होंने किसी तरह अपने को वचाया। रात समाप्त होते ही वह रास्ते की खोज में निकले। वह श्वेताङ्ग नहीं थे, इसलिए सभी जगह उन्हें अवज्ञा ही मिली। कुलियों ने उन्हें धोखा दिया।...किसी-किसी मकान में नौकरों ने उन्हें झिड़काड़ा भी। कहीं उनके मुँह पर ही दरवाजा वन्द कर दिया गया। हब्शी समझ कर लोगों ने उनका वड़ा अपमान किया। अन्त में क्लान्ति के कारण हताश होकर वह पथ के एक किनारे वैठ गये। ठीक उसी समय रास्ते के उस पार के एक मकान से एक भद्रमहिला ने उनके सामने आकर पूछा—"महाशय! क्या आप धर्म-महासभा के प्रतिनिधि हैं?" स्वामीजी ने उत्तर दिया—"जी हाँ, किन्तु मैं पता खो जाने से वड़ी विपत्ति में पड़ा हूँ।"

उसी समय आदर के साथ उन्हें वह महिला अपने घर ले गयीं। भोजन और विश्राम के बाद वह महिला स्वामीजी को धर्म-महासभा के कार्यालय में ले गयीं। वहाँ वह प्रतिनिधि रूप से गृहीत हुए तथा प्राच्य प्रतिनिधियों के साथ उनके रहने का प्रवन्ध हुआ।

❀ ❀ ❀

१८९३ ई० ११ सितम्वर, सोमवार, संसार के धार्मिक इतिहास का एक स्मरणीय दिन था, प्राच्य और प्रतीच्य के मिलन का दिन—समस्त विश्व में विश्व-भ्रातृत्व प्रतिष्ठा के आरम्भ का दिन। स्वामी विवेकानन्द के द्वारा विराट धर्ममहासम्मेलन में भारत का वेदान्त धर्म सर्वोच्च आसन पर सुप्रतिष्ठित हुआ।

पूर्वाह्न में यथारीति स्वस्तिवाचन और संगीतादि के अनन्तर आडम्वर के साथ महासभा का उद्घाटन हुआ। मंच के बीच में सभापति "कार्डिनल गीवन्स" बैठे थे। उन्हें केन्द्र में रखकर दाहिने और वायें प्राच्य

के विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधिवृन्द विराजमान थे। स्वामी विवेकानन्द किसी विशेष संप्रदाय के नहीं थे। वह थे समस्त भारत के सनातन वैदिक धर्म के प्रतिनिधि।

नीचे एक हाल था। उसके सामने वहुत वड़ी गैलरी थी। वहाँ अमेरिका के चुने हुए ६–७ हजार सुशिक्षित स्त्री-पुरुष वैठे थे और प्लाटफार्म के ऊपर पृथ्वी के सभी जातियों के पण्डितों का समावेश था। सभापति के द्वारा आहूत होकर प्रतिनिधियों ने अपने-अपने धर्म का परिचय देकर संक्षेप में भाषण दिया। वे सभी भाषण लिख लाये थे। स्वामीजी ने खड़े होकर––"मेरे अमेरिका-निवासी वहिनो और भाइयो"–– ––कहकर सभा को संवोधित किया। उन शब्दों में विपुल शक्ति थी, जिससे सभी श्रोताओं का हृदय स्पन्दित हुआ। भाषण के साथ-ही-साथ सैकड़ों श्रोता आसन छोड़कर खड़े हो गये, चारों ओर से कुछ मिनटों तक तुमुल करतलध्वनि होने लगी। वह उद्दीपन और करतलध्वनि रुकना नहीं चाहती थी।

सभी वक्ताओं ने प्रचलित प्रथा के अनुसार श्रोताओं का सम्वोधन किया था। केवल स्वामी विवेकानन्द ने ही मानव जाति को भगिनी और भाई कहकर सम्वोधित किया था। वक्ता के हृदय के भ्रातृभाव का स्पन्दन सभी के हृदय में झञ्कृत होने लगा। क्षणभर के लिए समस्त मानव जाति का एकत्व हजारों स्त्री-पुरुषों के हृदयों में अनुभूत हुआ।

स्वामीजी के उस सम्वोधन के भीतर विश्व-भ्रातृत्व का वीज, विश्व-मानवता की झंकार, वैदिक ऋषियों की वाणी और सौभ्रात्र का स्पर्श निहित थे।...सभी उस परमपिता की सन्तानें हैं, मनुष्य मनुष्य के भाई हैं; एक अखण्ड मानव जाति के भाई। रोमाँ रोलाँ ने उस सम्वन्ध में कहा था कि "यही श्रीरामकृष्ण का निःश्वास था जो समस्त वाधा-विघ्नों का अतिक्रमण कर उनके महान् शिष्य के मुख से निकला।"...

स्वामीजी आरम्भ के कुछ मिनटों तक वार-वार चेष्टा करने पर भी श्रोताओं के उत्साह और आनन्द को मन्दीभूत नहीं कर सके। अभिभूत

की तरह वह चुपचाप खड़े रहे। जब सभा शान्त हुई तब उन्होंने अपने पद्म-पलाश-लोचन-द्वय से ज्योति का विकिरण करते हुए गंभीर स्वर से एक छोटा-सा भाषण दिया। उन्होंने भारत के शाश्वत प्रेम की वाणी सुनायी। संक्षिप्त होने पर भी उनका भाषण उदार विश्व-जनीन भावों से पूर्ण था।*

* * *

उन्होंने भिन्न-भिन्न दिन जो भाषण दिये थे उनमें किसी धर्म की निन्दा या समालोचना नहीं थी। उन्होंने किसी भी धर्म को हीन नहीं बताया। उन्होंने कहा था—"ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं होना होगा अथवा हिन्दू या बौद्ध को ईसाई नहीं बनना पड़ेगा; बल्कि प्रत्येक धर्म को अपनी स्वतन्त्रता और विशिष्टता कायम रखकर दूसरों का भाव ग्रहण करना होगा और इसी तरह क्रमशः उन्नत होना पड़ेगा। उन्नति या विकास का यही एकमात्र नियम है।"

प्रत्येक वक्ता ने अपने-अपने सम्प्रदाय के भगवान के महिमा की बातें बतायी थी। एकमात्र स्वामी विवेकानन्द ने ही सभी धर्मों के भगवान की बात—उस विराट् पुरुष की बात कही थी। उस विराट् पुरुष को आश्रय करके जो सार्वभौम विश्वधर्म संगठित होगा उस सम्बन्ध में भी उन्होंने जोर दिया था।

धर्ममहासम्मेलन ने इस तरुण संन्यासी का अभिनन्दन किया। एक ही दिन में उनका यश सारे अमेरिका में फैल गया। शिकागो महानगरी स्वामीजी के चरणों के नीचे लोट गयी। अमेरिका के सभी शहर उस दिन से स्वामीजी की प्रशंसा में मुखर हो उठे। शिकागो के सर्वत्र उस वीर

---

* स्वामीजी ने धर्ममहासम्मेलन में भिन्न-भिन्न दिनों में ११ भाषण दिये थे। उन मूल्यवान भाषणों का एक भी, यहाँ स्थानाभाव के कारण देना संभव नहीं हुआ। उन भाषणों का हिन्दी अनुवाद "शिकागो वक्तृता" के नाम से नागपुर के श्रीरामकृष्ण आश्रम द्वारा प्रकाशित हुआ है।

सन्यासी के अगणित तिरंगे चित्र दर्शकों की श्रद्धा और विस्मय का उत्पादन करने लगे। मार्किन समाचार पत्रों ने स्वामी विवेकानन्द को धर्म महा-सम्मेलन के श्रेष्ठतम व्यक्ति रूप से घोषित किया। उनमें और भी लिखा गया––"उनकी वक्तृता सुनने के वाद भारत की तरह ज्ञान-वृद्ध देश में धर्म-प्रचारक भेजना कैसी मूर्खता का काम है उसे हम विशेष रूप से अनु-भव कर रहे हैं।"

स्वामीजी का "शिकागो भापण" भारत का संक्षिप्त मुक्तिपत्र है। उन्होंने हिन्दूधर्म की जो युगोपयोगी व्याख्या की थी उससे हिन्दू धर्म को विश्वधर्म के रूप में परिणत किया गया है और उसमें नवजीवन का संचार हुआ है। स्वामीजी ने हिन्दूधर्म को विश्व-वरेण्य वना दिया है।

भगिनी निवेदिता ने लिखा है––"स्वामीजी ने जव शिकागो महा-सभा में भाषण देना आरंभ किया तव हिन्दुओं की प्राचीन भावराशि के सम्वन्ध में ही कहा था। किन्तु जव उनका भाषण समाप्त हुआ तव आधु-निक हिन्दू-धर्म की सृष्टि हुई। उस समय भारत समष्टिरूप में उनकी भावधारा के महत्त्व के अनुभव की शक्ति पा गया।...भारत की धर्म सम्वन्धी सम्वित् पाश्चात्य देशों में प्रकाशित हुई।

धर्म महासभा के अंतिम दिन सितम्वर २७ को उन्होंने मानो महत्त्व के सर्वोच्च स्तर पर उठकर सभा को सुनाया––"...धर्ममहासभा ने यदि जगत् को कुछ दिखाया हो तो वह है––पवित्रता, चित्त-शुद्धि, दया, उदारता, महानुभावता, किसी धर्मसम्प्रदाय के निजस्व गुण नहीं हैं। हरएक धर्म में ही उन्नतचरित्र स्त्री-पुरुषों का आविर्भाव हुआ है। इतने प्रमाण रहते हुए भी यदि कोई स्वप्न में भी सोचे कि अन्य सभी धर्म विलुप्त होकर केवल उसी का धर्म जीवित रहेगा तो मैं उसे करुणा का पात्र समझूँगा। उसके लिए मैं वहुत दुःखी हुँ। परंतु साथ ही साथ मैं यह भी कहता हूँ कि उसे शीघ्र ही देखना पड़ेगा कि उसके विरुद्धाचरण करने पर भी सभी धर्मों के झंडे में लिखा रहेगा––'संग्राम नहीं, सहायता। विनाश नहीं, ग्रहण। द्वन्द्व नहीं, मिलन और शांति!'

स्वामी विवेकानन्द के इन महान् वाक्यों का फल विपुल हुआ था। उन्होंने वेदान्त की सार्वभौम वाणी का प्रचार किया था।...फलस्वरूप आर्य-धर्म, आर्य-जाति और आर्य-भूमि संसार के सामने पूजनीय रूप से प्रतिष्ठित हुई। हिन्दू-जाति पराधीन होने पर भी घृणा-योग्य नहीं, दीन-दरिद्र होने पर भी अमूल्य पारमार्थिक सम्पदाओं के अधिकारी तथा धर्म-जगत् में विश्व के गुरु-पद पर समासीन होने के योग्य है। सैकड़ों शताब्दियों के अनंतर स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू जाति के आत्ममर्यादा-वोध को उद्-वुद्ध कर दिया। घृणा और अपमान के कीचड़ से उठाकर हिन्दू-धर्म को उन्होंने जगत्-सभा में महोच्च आसन पर बैठाया।...

स्वामी विवेकानन्द की विजय से समस्त भारत उल्लसित तथा दीप्त हो उठा। दीनता और लांछना से अवनत भारत में आनन्द-मन्दाकिनी उतर आयी। स्वामीजी की उस विजय का प्रभाव भारत के जातीय जीवन के प्रत्येक कर्म और प्रत्येक प्रचेष्टा के ऊपर पड़ा था। केवल धर्म या आत्मिक क्षेत्र ही में नहीं, राष्ट्रीय, आर्थिक, सामाजिक तथा जाति के सामूहिक जीवन में भी वह अत्यधिक फलप्रसू हुआ था।

रोमाँरोलाँ ने उस जागरण के सम्वन्ध में लिखा था कि—"...यही सर्वप्रथम भारत की अग्रगति आरंभ हुई। उस दिन से अतिकाय कुंभकर्ण का निद्राभंग होने लगा।...स्वामीजी के निर्वाण के तीन साल वाद यदि उनके वंशज वंगाल के विद्रोह तथा तिलक और गांधी के आन्दोलन की सूचना प्रत्यक्ष करते हैं, भारत यदि आज जनसाधारण के संघ-वद्ध कर्मों के भीतर अपना सुनिर्दिष्ट अंश ग्रहण करता है तो समझना होगा कि वह स्वामी विवेकानन्द के शक्तिपूर्ण आह्वान का ही फल है।" स्वामी विवेकानन्द भारत की नव जागृति के ऋत्विक् और स्वाधीनता-संग्राम के अग्रदूत थे।...

अख्यात, अज्ञात स्वामी विवेकानन्द विश्व-वरेण्य हो गये। जिस हिन्दू-धर्म को मूर्ति-पूजक मात्र नाम दिया गया था, जो हिन्दू धर्म विश्व-सम्मेलन में निमंत्रित ही नहीं हुआ, उस हिन्दू धर्म के अनाहूत प्रतिनिधि

रूप से उपस्थित होकर स्वामी विवेकानन्द ने उस धर्म-सम्मेलन में सनातन वैदिक धर्म के लिए सर्वोच्च रत्न-सिंहासन पर अधिकार कर लिया था। * उनका वहाँ नाम पड़ा--"साइक्लोनिक हिन्दू मङ्क" (प्रभंजन-सदृश हिन्दू संन्यासी) तथा "लाइटनिङ्ग ओरेटर" (विद्युत-सदृश वाग्मी)।

उस महासभा की जेनरल कमेटी के सभापति रेवरेण्ड वैरोज महोदय ने भी कहा था--"स्वामी विवेकानन्द ने अपने श्रोताओं के ऊपर आश्चर्य-जनक प्रभाव डाला था।" वह इतने लोक-प्रिय वक्ता थे कि यदि एकवार मंच के ऊपर से चले जाते तो उसी से श्रोतालोग ताली ठोंककर उनका अभिनन्दन करते। नीरस भाषण या निवन्ध श्रवण से यदि श्रोतालोग ऊबने लगते तो सभापति खड़े होकर कहते--"सभा समाप्त होने के पूर्व स्वामी विवेकानन्द एक छोटा-सा भाषण देंगे।" स्वामीजी के मुख से एक-दो वातें सुनने के लिए लोग फिर शान्त होकर दो घण्टे प्रतीक्षा करते। किन्तु इस सम्मान को स्वामी विवेकानन्द ने वहुत ही दीन भाव से ग्रहण किया था। वह अपने को "वार्तावह" मात्र वताते थे। वह थे श्रीरामकृष्ण देव के वार्तावह और वहन कर ले गये थे--आर्य ऋषियों की वाणी।

❀ ❀ ❀

धर्म-महासभा समाप्त होते ही स्वामीजी को विभिन्न स्थानों में भाषण देने के लिए निमंत्रण मिलने लगे। अनेक प्रतिष्ठानों, सभाओं गिरजाघरों,

---

*धर्म महासभा के अनन्तर स्वामीजी ने अपने मद्रासी शिष्यों को लिखा था--"...यहाँ की धर्म-महासभा का उद्देश्य था—अन्य सभी धर्मों की अपेक्षा ईसाई-धर्म की श्रेष्ठता प्रमाणित करना। किन्तु उसके उद्योगियों के दुर्भाग्य से फल विपरीत हो गया।..." हमें ऐसा लगता है कि सनातन वैदिकधर्म की श्रेष्ठता प्रमाणित होने के लिए ही उस विश्व-धर्म-सम्मेलन का आयोजन हुआ था और अतीत के आर्य ऋषियों के प्रतिभू रूप में स्वामी विवेकानन्द समुद्र लांघकर उस विशेष कार्य के लिए ही अमेरिका में उपस्थित हुए थे।

महिला-समितियों, संशोधनागारों, शिक्षा-प्रतिष्ठानों, विश्वविद्यालयों तथा विशिष्ट व्यक्तियों के मकानों में वह निमंत्रित हुए। उस समय एक व्याख्यान कम्पनी ने उस जनप्रिय वक्ता को युक्तराष्ट्र के विभिन्न स्थानों में व्याख्यान देने के लिए निमंत्रण भेजा। अमेरिका के जनसाधारण के साथ परिचित होने का अवसर समझकर स्वामीजी राजी हुए और उस कम्पनी के प्रवन्ध के अनुसार युक्तराष्ट्र के एक प्रान्त से दूसरे प्रांत में भाषण देने लगे। सर्वत्र ही उनका विशेषरूप से अभिनन्दन और सम्मान हुआ और उनकी वक्तृता का फल भी विस्मयजनक हुआ था। वह केवल वेदान्त सम्बन्धी भाषण ही नहीं देते थे, आर्य सभ्यता, भारतीय संस्कृति, समाज व्यवस्था, मूर्तिपूजा, सामाजिक रीति-नीति, नारी-जाति का आदर्श आदि विभिन्न विषयों पर व्याख्यान देते थे। फलस्वरूप मिशनरी लोग जो भारत-वासियों को नंगे; मनुष्यभक्षी, असभ्य, बर्बर, विधर्मी, धर्म-विश्वास-रहित, मूर्ति-पूजक आदि रूप से प्रचार करते थे, उस प्रकार की धारणाएँ, जनसाधारण के मन से लुप्त हो गयी। 'जिस जाति के भीतर विवेकानन्द की तरह महान् पुरुष जन्म ग्रहण करते हैं, उस जाति के सम्वन्ध में वैसी उटपटांग वातों के रहने का अवकाश ही न रहा।'...किन्तु थोड़े दिनों के वाद कई कारणों से उन्होंने उस कम्पनी की ओर से भाषण देने का काम छोड़ दिया और स्वयम् स्वतंत्ररूप से वेदान्त का प्रचार करने लगे। उसी समय से अमेरिका में उनका ठीक-ठीक कार्य आरंभ हुआ। पहले भूमिकर्पण और उसके वाद वीज वपन होने लगा।

स्वामीजी का वेदान्त-प्रचार निष्कण्टक नहीं था। ईसाई मिशनरियों का शत्रुताचरण उन्हें वहुत दिक कर रहा था। किन्तु वह उसकी परवाह न कर सिंह के समान वीर पद-क्षेप से अपना काम करते जा रहे थे। फिर उन्हें कुछ परीक्षाओं का सामना भी करना पड़ा था। एकवार अमेरिका के पश्चिमी भाग के एक शहर में व्याख्यान देते समय कुछ युवक उनके मुख से वेदान्त की वाणी सुनकर भारतीय योगी की योगशक्ति की परीक्षा लेने के लिए स्वामीजी को अपने ग्राम में वुलाकर ले गये। वहाँ उन लोगों ने

एक सभा का आयोजन करके एक उलटकर रखे हुए पीपे के ऊपर खड़े होकर भाषण देने का प्रबन्ध किया। स्वामीजी उस पीपे पर खड़े होकर भाषण दे रहे थे, इसी समय उनके कानों के दोनों ओर से सों-सों करती हुई बन्दूक की गोलियाँ छूटने लगीं। स्वामीजी उससे विचलित न होकर भाषण देते ही रहे। युवक उन्हें परीक्षा में उत्तीर्ण देखकर हर्षध्वनि करने लगे—"यथार्थ महात्मा, यथार्थ महात्मा।"

वह बिजली के वेग से एक शहर छोड़कर दूसरे शहर जाने लगे। कभी-कभी एक-एक सप्ताह में बारह या चौदह भाषण देने पड़ते थे। थोड़े समय के भीतर अमेरिका के अनेक विख्यात और विचारशील व्यक्ति उनके अनुरागी, तथा शिष्य हो गये थे। कुछ लोग तो उनसे संन्यास धर्म ग्रहण कर वेदान्त-प्रचार-कार्य में लग गये।...

१८९५ ई० के फरवरी में उन्होंने न्यूयार्क शहर में राजयोग और ज्ञानयोग के सम्बन्ध में भाषण देना आरम्भ किया। थोड़े दिनों के बाद उन व्याख्यानों का संग्रह पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने पर अमेरिका के शिक्षित और विचारशील व्यक्तियों में उसके पठन-मनन के लिए इतना अधिक आग्रह उत्पन्न हुआ था कि कुछ सप्ताहों के भीतर उक्त ग्रंथ के तीन संस्करण समाप्त हो गये।...

पाश्चात्य विजय से मत्त होकर स्वामीजी भारत को नहीं भूले थे। उनके मन के एक गंभीर स्तर में भारत की चिन्ता निहित थी। इस कारण उन्होंने पाश्चात्य देशों में रहते हुए भी सारे भारत में विभिन्न केन्द्र और शाखा-केन्द्र स्थापित करके जनसाधारण के भीतर जातीयताबोध जगाने के लिए अपने गुरुभाइयों और शिष्यों का आह्वान किया था। एक पत्र में उन्होंने लिखा था—"...आगामी ५० वर्षों के लिए अन्य सभी देवताओं को मन से निकाल देना होगा। एकमात्र जाग्रत देवता—हमारी जाति है।...इस विराट् की पूजा ही हमारी मुख्य पूजा होगी।... सबसे पहले हम जिस देवता की पूजा करेंगे, वे हैं हमारे स्वदेशवासी।"

स्वामीजी की पुकार व्यर्थ नहीं हुई उनके गुरुभाइयों और शिष्यों ने

उनका आदेश सुना और वे काम करने के लिए सन्नद्ध हुए, कलकत्ते और मद्रास में दो केन्द्र जनजागरण के काम के लिए स्थापित हुए। स्वामीजी जव इसी ढंग से अमेरिका में वेदान्त की वाणी का प्रचार तथा भारत में संगठन कार्य करने में व्यस्त थे, ठीक उसी समय यूरोप से वेदान्त-प्रचार के लिए निमन्त्रण आया। कुछ अंग्रेज मित्रों नें उन्हें इंगलैण्ड जाने के लिए वार-वार अनुरोध करके पत्र भेजा —"यहाँ वेदान्त प्रचार का विस्तृत क्षेत्र पड़ा हुआ है। आपके आते ही सारी व्यवस्था हो जायगी।" उस आह्वान के भीतर उन्हें श्रीभगवान् का इंगित प्रतीत हुआ। उन्होंने मन को स्थिर कर लिया और यूरोप जानेवाले एक धनिक के साथ रवाना होकर पेरिस नगर में पधारे और वहाँ से लन्दन आये।

आठ

इंगलैण्ड आने के पूर्व अंग्रेज जाति के लोग एक विजित जाति के हिन्दू-प्रचारक को किस भाव से ग्रहण करेंगे वह उनकी विशेष चिन्ता का विषय वन गया था। किन्तु कुछ दिनों के भीतर ही उनका मन संशय-रहित हो गया।...महान तेजस्वी उस तरुण संन्यासी ने कुछ दिनों के भीतर ही अनेक विशिष्ट विद्वानों की श्रद्धा आकर्षित कर ली। तीन सप्ताह के भीतर ही विशिष्ट क्लव और सोसाइटियाँ उन्हें निमंत्रण देने लगीं।

१८९५ ई० के २२ अक्टूवर को स्वामीजी ने पिकाडिली स्थित प्रिन्सेप-हाल में "आत्मज्ञान" के संवंध में प्रथम भाषण दिया। उनके प्रभाव के वारे में "स्टैण्डर्ड" पत्रिका ने लिखा था—"...उस दिन भारत के एक युवक संन्यासी ने प्रिन्सेप-हाल में भाषण दिया था। राजा राममोहन राय के वाद केशवचन्द्र सेन के अतिरिक्त भारतवासियों में ऐसा श्रेष्ठ वक्ता और कभी इंगलैण्ड के व्याख्यान-मंच पर नहीं दिखाई पड़ा था।..."

थोड़े ही दिनों के भीतर स्वामीजी ने अंग्रेजों के मन पर विजय प्राप्त कर ली। सभी नामी समाचारपत्र उनकी प्रशंसा से पूर्ण थे। एक पत्र ने लिखा था—"यथार्थ में ही लन्दन के प्रतिष्ठित परिवारों की महिलाओं को

कुर्सी न मिलने के कारण भारतीय शिष्यों की तरह श्रद्धापूर्वक जमीन पर पैर समेटकर बैठे भाषण सुनते देखना एक अपूर्व दृश्य था।...स्वामीजी ने अंग्रेजों के हृदय में भारत के प्रति जिस प्रेम और सहानुभूति का संचार किया है, उससे भारत की उन्नति के लिए विशेष सहायता मिलेगी।"

इंगलैण्ड में उनके प्रचार का कहाँ तक व्यापक प्रभाव पड़ा था, उसका सुस्पष्ट आभास उनके एक पत्र से मिलता है। उन्होंने १८ नवम्बर (१८९५ ई०) को मद्रासी शिष्य आलासींगा को लिखा था—"...इंगलैण्ड में मेरा काम बहुत ही उत्तम हुआ है। मैं स्वयं ही आश्चर्यचकित हो गया हूँ। अंग्रेज लोग समाचार पत्रों में भम्भड़वाजी नहीं करते, बल्कि वे चुपचाप काम करते हैं।...दल-के दल लोग आ रहे हैं। किन्तु इतने मनुष्यों की तो मेरे यहाँ जगह नहीं है। इस कारण बड़े-बड़े घर की महिलायें तथा अन्यान्य व्यक्ति जमीन पर ही पल्थी मारकर बैठ जाते हैं। मैं उन्हें ऐसी कल्पना करने को कहता, मानो वे भारत के आकाश के नीचे शाखा-प्रशाखायुक्त विस्तृत वटवृक्ष की छाया में बैठे हुए हैं। वे लोग इस भाव को पसंद भी करते हैं।..."

लन्दन में स्वामीजी का काम अग्रसर हो रहा था, परन्तु उधर अमेरिका से उनके शिष्य वहाँ के काम के लिए उन्हें लगातार बुलाने लगे। इस कारण वे भी वहाँ जाने के लिए तैयार हुए। किन्तु इंगलैण्ड छोड़ने के पहले वे कुछ शिष्यों को गीता, उपनिषद आदि के अवलम्बन से आलोचना चलाते रहने के काम में नियुक्त करके ६ दिसम्बर को अमेरिका रवाना हुए। लगभग ३ मास तक इंगलैण्ड में वेदान्त प्रचार करते रहे।

❀ ❀ ❀ ❀

अमेरिका लौटकर स्वामीजी अपने काम को स्थायी करने तथा प्रचारक तैयार करने के काम में कटिबद्ध हुए। भारतवर्ष से प्रचार कार्य के लिए अपने गुरुभाइयों को लाने का प्रबन्ध भी उन्होंने कर दिया। उन्होंने जो कर्मयोग और भक्तियोग के सम्बन्ध में भाषण दिये थे वह भी पुस्तक के

रूप में प्रकाशित हुए। फलस्वरूप अमेरिका और योरोप के विचारशील व्यक्तियों के ऊपर विपुल प्रभाव पड़ा था।...

उनकी वाणी के लिए तृष्णार्त स्त्री-पुरुषों की भीड़ लग जाती थी। वे प्रायः क्लबों और विश्वविद्यालयों से आते थे। शुद्धचेता ईसाई तथा स्वाधीनचेता मनीषी लोग उत्कंठित होकर आये। फिर संशयवादी, समालोचक, नास्तिक आदि भी आये। उन्होंने सबका स्वागत किया। ऐंग्लो सेक्शन जाति में जो गुण थे, अच्छी बातें थीं, उनकी उन्होंने उपेक्षा नहीं की और जो दोष थे, उनकी भी तीव्र समालोचना करने से विरत नहीं हुए। पाश्चात्य की अर्थ-नीति, शिल्प-व्यवस्था, जनशिक्षा, अजायबघर, कारखाने, विज्ञान की उन्नति, स्वास्थ्य-व्यवस्था तथा विभिन्न जनहितकर कार्य—इन सभी की उन्होंने प्रशंसा की और भारत की उन्नति के लिए इन सभी का प्रवर्तन आवश्यक है, इसे भी उन्होंने श्रद्धा के साथ ग्रहण किया था। किन्तु साथ-ही-साथ, पाश्चात्य सभ्यता की भौतिक भोगस्पृहा, सुवर्ण की अपवित्र पूजा, साम्राज्यवाद, विश्व को ग्रास करने की लालसा, दूसरी जातियों का रक्त शोषण कर अपनी देह को पुष्ट करना आदि साम्य और मैत्री के कितने विरोधी हैं उसे भी उन्होंने कठोर शब्दों में प्रकट किया था।...यहाँ तक कि इंग्लैण्ड की छाती पर खड़े होकर उन्होंने वणिक समृद्धि, शोणित-लोलुप युद्ध तथा असहिष्णु धर्ममत के प्रति तीव्र कटाक्ष करते हुए कहा था—"...इस मूल्य से हिन्दू तुम्हारे निःस्सार दंभ पूर्ण सभ्यता के अनुरागी नहीं होंगे।"...

उनका प्रधान कार्य था—पूर्व और पश्चिम की सभ्यताओं की मिलन-भूमि की रचना, आध्यात्मिकता तथा विज्ञान के विश्वस्त विनिमय से पारस्परिक सहायता के माध्यम से नयी सभ्यता का गठन करना। अनेक शताब्दियों के अनन्तर भारतीय संस्कृति ने स्वामी विवेकानन्द के भीतर से पुनः अपना पथ तैयार कर लिया था।

स्वामीजी की श्रेष्ठ देन विस्तार के सम्बन्ध में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने कहा था—"...थोड़े दिन पूर्व बंगाल में जिस महात्मा का तिरोधान हुआ

है, वह स्वामी विवेकानन्द पूर्व और पश्चिम को दाहिने और बायें रखकर ठीक बीच में खड़े हो सके थे। भारतवर्ष के इतिहास में पाश्चात्य को अस्वीकार करके भारतवर्ष को संकीर्ण संस्कारों के भीतर चिरकाल के लिए संकुचित करना, उनके जीवन का उद्देश्य नहीं था। ग्रहण करने, मिलन कराने तथा सृजन करने की प्रतिभा उनमें विशेपरूप से थी।...उन्होंने भारतवर्ष की साधना को पश्चिम में और पश्चिम की साधना को भारतवर्ष में देने और लेने की मार्ग-रचना में अपना जीवन का उत्सर्ग किया था"--(रामकृष्ण मिशन, शिक्षण मंदिर बेलूड़ मठ से प्रकाशित "सन्दीपन" संख्या २ सन् १९६१ ई०)।

स्वामी विवेकानन्द प्राच्य और प्रतीच्य के मिलन-सेतु स्वरूप थे। पाश्चात्य देशों के लिए भारत की आध्यात्मिक सम्पदा वहन कर ले जाना ही इनका प्रधान कार्य था और भारत तथा प्राच्य के लिए धन-सम्पदा और शक्ति के अर्जन के उपाय रूप विज्ञान को जातीय जीवन में प्रयोग करना भी उनका दूसरा उद्देश्य था।...

स्वामीजी ने १८९६ ई० के फरवरी मास में न्यूयार्क में वेदान्त समिति स्थापित की, बाद में डेट्रएट, बोस्टन आदि स्थानों में वैसी ही समितियाँ कायम करके उन्होंने शिष्यों के ऊपर उनके कार्यसंचालन का भार सौंप दिया। उन्होंने अनेक विख्यात व्यक्तियों को वेदान्त धर्म में दीक्षित किया। उनमें से कुछ लोग वेदान्त प्रचार में भी लग गये। इसी तरह अमेरिका के अनेक चोटी के विद्वान, दार्शनिक, वैज्ञानिक, अध्यापक, लेखक, लेखिका आदि स्वामीजी के प्रति श्रद्धा-सम्पन्न तथा अनुरक्त हो गये थे। स्वामीजी का व्यक्तित्व इतना विशाल था कि कोई भी उनके संस्पर्श में आया तो वह उन्हें गुरु मानने को बाध्य हुआ। अमेरिका में भारत की वाणी सुप्रतिष्ठित करने में स्वामीजी की जीवनी-शक्ति प्रायः समाप्त हो चुकी थी, तथापि उन्होंने वैसा किया था।...

अमेरिका में स्वामीजी जिस समय ऐसे कामों में व्यस्त थे, तब इंगलैण्ड के शिष्यों से बार-बार आमन्त्रण आने लगे। इंगलैण्ड की जोती

हुई भूमि में बीज बोने का समय आ गया। वह भी प्रस्तुत होने लगे। पूर्व व्यवस्था के अनुसार उनके वेदांत-प्रचार-कार्य में सहायता देने के लिए उनके गुरुभाई स्वामी सारदानन्द भारतवर्ष से रवाना हुए थे। वह १८९६ के पहली अप्रैल को लन्दन में उतर गये। स्वामीजी भी न्यूयार्क से १५ अप्रैल को इंग्लैण्ड रवाना हुए, किन्तु जाने के पूर्व अमेरिका के कार्य-यंत्र को उन्होंने फिर बड़े वेग से संचालित कर दिया।

स्वामीजी ने लन्दन पहुँचते ही मई मास के प्रथम ही प्रचारकार्य आरम्भ किया। नियमित रूप से ज्ञान-योग पढ़ाने के अतिरिक्त वह इंग्लैण्ड के अनेक स्थानों में भाषण देने लगे। इंग्लैण्ड के श्रोताओं की विचारशीलता पर भी उन्होंने ध्यान दिया। रक्षणशीलता भी उनका एक विशिष्ट गुण था। युक्तराष्ट्र में कुछ श्रेष्ठ मनीषियों को उन्होंने अपने अन्तरंग मित्ररूप से पाया था, किन्तु अंग्रेजों के दान ने स्वामीजी के काम में और भी अधिक सहायता दी थी। उन लोगों में मिस मूलर, मिस नोवल (भगिनी निवेदिता), मिस्टर स्टार्डी, सेवियर दम्पत्ति और जे० जे० गुड्विन के नाम विशेष रूप से उल्लेख-योग्य हैं। इन सभी ने भारत की सेवा में आत्मोत्सर्ग किया था।...

लन्दन में रहते समय स्वामीजी और पंडित-प्रवर मैक्समूलर का मिलन एक विशेष गुरुत्व-पूर्ण घटना है। मैक्समूलर के द्वारा आमंत्रित होकर स्वामीजी ने आक्सफोर्ड में वृद्ध प्रोफेसर के घर जाकर उनसे भेंट की। दोनों का मिलन बहुत ही अन्तरंगतापूर्ण था। इस परिचय के फलस्वरूप अध्यापक महोदय श्रीरामकृष्ण के प्रति अधिक श्रद्धा-सम्पन्न हुए और बाद में उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव की जीवनी लिखी। अध्यापक महोदय से विदा लेकर रात्रि के समय स्वामीजी जब ट्रेन के लिए स्टेशन पर प्रतीक्षा कर रहे थे तब वृद्ध अध्यापक आँधी-पानी के भीतर स्टेशन पर आ हाजिर हुए। उन्हें देखकर स्वामीजी ने बड़े संकोच के साथ कहा—"ऐसे दुर्योग के भीतर आप कष्ट करके क्यों आये?" गद्गद् स्वर से अध्यापक ने उत्तर दिया—"श्रीरामकृष्ण के योग्यतम शिष्य के दर्शन लाभ का सौभाग्य

प्रतिदिन नहीं होता।" स्वामीजी चुप रह गये। उन मर्मस्पर्शी शब्दों ने स्वामीजी को एकदम अभिभूत कर डाला।...

जुलाई मास तक प्रचार कार्य चलाकर वह सेवियर दम्पत्ति और मिस मूलर के साथ योरोप भ्रमण में निकले। स्वामी सारदानन्द को भी वेदान्त प्रचार के लिए अमेरिका में भेज दिया। विश्राम के लिए स्वामी जी प्रथम स्विट्जरलैण्ड गये। वर्फ की ठंडी हवा, जल-प्रपात तथा पर्वतीय शोभा देखकर वह वहुत ही पुलकित हुए। कुछ दिनों के भीतर ही उनके स्वास्थ्य में उन्नति दिखाई पड़ी। ठीक उसी समय जर्मनी के कील विश्व-विद्यालय के सुप्रसिद्ध अध्यापक पल डैसन ने स्वामीजी को उनसे मिलने के लिए वुलावा भेजा। इस कारण स्वामीजी ने योरोप भ्रमण वन्द कर, कील नगर में प्राफेसर के घर जाकर उनसे भेंट की। वेदांत चर्चा ही उस अध्यापक का एक मात्र जीवन व्रत था। स्वामीजी के साथ वेदांत और उपनिषद् आदि की आलोचना से प्रोफेसर इतने अधिक मुग्ध हुए कि उन्होंने स्वामीजी को वहाँ कुछ दिन रह जाने के लिए अनुरोध किया। किन्तु लन्दन के काम के लिए वैसा होना सम्भव नहीं है, जानकर वह स्वयम् ही स्वामीजी से जाकर मिल गये। लन्दन में दो सप्ताह तक प्रतिदिन प्रोफेसर साहव ने स्वामीजी के साथ वेदांत-चर्चा की, उनके व्याख्यान आदि सुनकर वेदांत के उज्ज्वल प्रकाश में अध्यापक का अन्तर सद्भासित हो गया।

❀ ❀ ❀ ❀

स्वामीजी के उस प्रचार का फल वहुत व्यापक हुआ। इंगलैण्ड के धर्म-याजकों की विचारधारा भी उससे विशेप रूप में प्रभावित हुई थी तथा अनेक विद्वान स्वामीजी के संस्पर्श में आकर उपकृत हुए थे।

स्वामीजी के इंगलैण्ड छोड़ने के १४ मास के वाद सुप्रसिद्ध वक्ता श्रीविपिनचन्द्र पाल उस देश में गये थे। उस समय भी उन्होंने स्वामी विवेका-नन्द का प्रभाव इतना उज्ज्वल देखा था कि उन्होंने "इण्डियन मिरर" समाचार पत्र में लिखा था—"...भारत में अनेक की धारणा है कि

इंगलैण्ड में स्वामी विवेकानन्द के भाषण का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था, उनके मित्रों और समर्थकों ने साधारण कार्य को अतिरंजित करके प्रकट किया है। परन्तु मैं यहाँ आकर सर्वत्र ही उनका असाधारण प्रभाव देख रहा हूँ। इंगलैण्ड में मैंने अनेक व्यक्तियों के साथ वार्तालाप किया है, जो लोग यथार्थ में ही स्वामी विवेकानन्द के ऊपर अपार श्रद्धा रखते हैं।... उनके प्रचार-कार्य के कारण आजकल यहाँ के अनेक मनुष्यों को विश्वास हो गया है कि प्राचीन हिन्दू शास्त्र में अनेक आध्यात्मिक सत्य निहित है। उन्होंने जनसाधारण के मन में केवल यही भाव नहीं दिया, अपितु वह भारत और इंगलैण्ड को एक सुवर्णमय योगसूत्र द्वारा दृढ़ता से वाँधने में वह सफल हुए हैं।"...केवल अंग्रेज जाति के भीतर ही नहीं, स्वामी विवेकानन्द के प्रचार के फलस्वरूप सारे ऐंग्लो-सेक्शन जाति के भीतर भारतीय धर्म और संस्कृति के सम्वन्ध में जानने तथा उसे जातीय जीवन में परिणत करने की चेष्टा भी उनमें होने लगी थी।...

स्वामीजी ने लन्दन में अन्तिम बार जो भाषण दिया था, उनसे अनेक चिन्ताशील व्यक्तियों के विचार में आलोड़न उत्पन्न हो गये थे और उनके विचार में यथेष्ट प्रेरणा मिली थी।...

पूर्व व्यवस्था के अनुसार इन्हीं दिनों स्वामीजी के दूसरे गुरुभाई स्वामी अभेदानन्द जी लन्दन पहुँचे। उन्होंने नवागत प्रचारक को तैयार करके कार्य-क्षेत्र में उतारने का प्रवन्ध किया। उधर स्वामी सारदानन्द न्यूयार्क में विशेष सफलता के साथ वेदांत प्रचार कर रहे थे।...इस प्रकार प्रतीच्य में वेदान्त सुप्रतिष्ठित हुआ।

भारतवर्ष के आह्वान में जो करुण स्वर था उससे स्वामीजी का अन्तर आलोड़ित हुआ। भारत की चिन्ता ने उनके हृदय पर अधिकार कर लिया। सारा भारत उन्हें पाने के लिए व्याकुल था। उस समय एक अंग्रेज मित्र ने उनसे पूछा था—"स्वामीजी, इन कई वर्षों तक पाश्चात्य देशों में रहने के वाद भारत आपको कैसा लगेगा। आवेग के साथ उन्होंने उत्तर दिया—"पाश्चात्य देशों में आने के पूर्व मैं भारतवर्ष को हृदय से

प्यार करता था, किन्तु अब मेरे लिए भारत की वायु यहाँ तक कि भारत की प्रत्येक धूलि-कण पवित्र है। भारत भूमि पवित्र भूमि है। भारत मेरा परम पवित्र तीर्थ है।"...

स्वामीजी ने भारत लौटने के बारे में निश्चय करके मद्रास तथा अन्यत्र शिष्यों को पत्र लिखे। सेवियर सम्पत्ति और गुड्‌विन स्वामीजी के साथ-साथ चलने के लिए तैयार हो गये। मिस मूलर और मिस नोवल भी भारतवर्ष में स्त्री-शिक्षा विस्तार के लिए स्वामीजी का अनुगमन करेंगी, ऐसा निश्चय हुआ।

अनेक छात्रों और शिष्यों का चित्त स्वामीजी के अभाव-बोध के कारण भाराक्रान्त हो गया। विराट् विदाई सभा में हजारों स्त्री-पुरुष उपस्थित हुए। अनेक के नेत्रों में आँसू डबडबाने लगे।...स्वामीजी ने लन्दन निवासियों का हृदयों पर विजय प्राप्त कर ली थी।

नौ

१८९६ ई० के १६ दिसम्बर लन्दन छोड़कर स्वामीजी डोवर, कैले और मण्टसेनिस के रास्ते से इटली पहुँचे। रोम ने उन्हें अभिभूत कर दिया था।...रोम से नेपल्स। ३० दिसम्बर को नेपल्स से उनका जहाज छूटा। १८९७ ई० के १५ जनवरी उस जहाज के कोलम्बो पहुँचने की बात थी।...

स्वामीजी के सम्पूर्ण मनःप्राण भारत की चिन्ता में डूब गये। पाश्चात्य देशों से क्या वह खाली हाथ लौटे थे? नहीं, वह विपुल संचय लेकर जा रहे थे। सब कुछ भारत की उन्नति के काम में लगाएंगे, पाश्चात्यों की संगठन शक्ति, विज्ञान, कर्मपरता, अदम्य उत्साह—ये सब भारत के जातीय जीवन की समुन्नति के लिए बहुत ही आवश्यक हैं।...

डेट्रएट में कुछ शिष्यों के निकट उन्होंने एकदिन कहा था—"इस देश के लोगों के निकट मेरे काम का मूल्य कितना है? और उसमें से कितना

ये लोग ग्रहण कर सकेंगे ?...वास्तव में मेरे कार्य का यथार्थ आदर केवल भारतवर्ष में ही हो सकता है।...कुछ दिन प्रतीक्षा करो, देखना भारत के मर्मस्थल तक आलोड़ित हो जायगा, उसकी नस-नस में विजली दौड़ेगी, विजयोल्लास से भारत निवासी मुझे छाती पर उठा लेंगे।" वह भारत-वासियों को पहचानते थे, किन्तु उन्होंने कभी सोचा नहीं था कि समस्त जाति उनके आगमन की प्रतीक्षा में इतनी उत्कण्ठा के साथ स्वागत के लिए खड़ी है। अपने पूज्य तथा प्रिय स्वामी विवेकानन्द का स्वागत करने के लिए देशव्यापी अभावनीय आयोजन ! यह आयोजन स्वतः-प्रणोदित था। इसमें राजशक्ति की पृष्ठ-पोपकता का लेश भी नहीं था। नगरों में अग-णित द्वार वनाये गये, रास्ते, घर, मन्दिर सुसज्जित किये गये, उत्सव में उल्लसित जनता आकुल आग्रह से प्रतीक्षा कर रही थी। कोलम्वों से काश्मीर तक समस्त भारतभूमि में भारत-गौरव स्वामी विवेकानन्द को जो राजकीय सम्वर्धना दी गयी थी, वह यथार्थ में ही अचिन्तनीय थीं।...

१८९७ ई० के १५ जनवरी को गोधूलि वेला में स्वामीजी जव कोलम्वो पहुँचे तो उनके गेरुए पगड़ी को देखते ही वन्दरगाह में सागर-गर्जन-विनिन्दित अगणित मनुष्यों का आनन्दकोलाहल तथा जयध्वनि होने लगी। स्टीम लंच से जव उन्हें तीर लाया गया तो सैकड़ों स्त्री-पुरुष उनके चरणों पर लोट गये। स्वामीजी के गले में विजयमाला डाली गई, वेद-गान होने लगा, मंगलवाद्य वज उठे, पुष्पमाल्यादि शोभित सुदृढ़ ध्वज-छत्र-चामर-परिवृत शोभा-यात्रा के साथ उन्हें आधी मील दूर दारुचीनी वाग के विस्तृत सभामण्डप में लाया गया। अभिनन्दनपत्रों का पाठ हो जाने पर सहस्र कण्ठों की जयध्वनि के वीच स्वामीजी ने प्राच्य में अपना प्रथम भाषण दिया। उन्होंने संक्षेप में कहा—"...आप लोगों के द्वारा अभि-नन्दित होकर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ हूँ। मैं कोई राजा-महाराजा, धन कुवेर या प्रसिद्ध राजनैतिक नेता नहीं हूँ, मैं केवल एक अकिञ्चन संन्यासी मात्र हूँ, तथापि आपलोगों ने जिस प्रकार मेरा स्वागत किया, उससे मालूम होता है कि हिन्दू जाति अभी तक आध्यात्मिक सम्पत्ति से रहित नहीं हो

गयी है। यह सम्मान मेरा नहीं है—धर्म के प्रति ही यह सम्मान प्रदर्शित हुआ है।...और यथार्थ ही में यदि हिन्दू जाति को जीवित रहना है तो धर्म का ही आश्रय लेना होगा। धर्म ही उसके जातीय जीवन का मेरुदण्ड है।

दूसरे दिन से स्वामीजी के भाषण का दौरा शुरू हुआ। सिंहल के विभिन्न स्थानों में स्वामीजी १० दिन रहे। सभी जगह उन्हें विशेष सम्मान दिया गया। जनसाधारण के उत्साह ने उन्हें अभिभूत कर दिया। उन्होंने भारतभूमि की महिमा का कीर्त्तन किया। निरीह हिन्दुओं की धर्मपरायणता, धर्म ही भारत का मुख्य सहाय, आध्यात्मिक आलोक ही जगत् में भारत का दान, सनातन और युगधर्म, वेदान्त-दर्शन, सार्वजनीन धर्म और सर्व-धर्मसमन्वय की वाणी सुनायी। उनकी उद्दीपनामयी वक्तृता ने सभी के हृदय को उद्दीप्त किया तथा पुलकित कर दिया। कोलम्बो, काण्डी, अनु-राधापुरम्, जाफना आदि स्थानों में नवजागरण की सृष्टि करके वह पाम्बन में पधारे। रामनाद के अधिपति ने स्वामीजी की विपुल सम्वर्धना की। विभिन्न भाषाओं के कई मानपत्र दिये गये। उसके उत्तर में स्वामीजी ने सुललित कण्ठ से समस्त भारत को जागृति और आशा की वाणी सुनायी। "...सुदीर्घ रजनी का मानो अवसान हो रहा है, महान् दुःख की समाप्ति का अनुभव होने लगा है, महानिद्रा से मानो शव जग उठा है।...मानो हिमालय के प्राणदायक वायु के स्पर्श से मृत देह के शिथिल अस्थि-मांस में प्राण-संचार हो रहा है, मानो निद्रित शव जागृत हुआ है—उसकी जड़ता दूर हो रही है। जो अंधा है, उसे दिखायी नहीं पड़ता, जिसका मस्तिष्क विकृत है, वह भी समझ नहीं सका कि हमारी मातृभूमि अपनी गम्भीर निद्रा को छोड़कर जागृत हो रही है। अब कोई भी इसकी गति को रोकने में समर्थ नहीं है। यह फिर निद्रा में आच्छन्न नहीं होगी। कुम्भकर्ण की सुदीर्घ निद्रा अब भंग हो रही है।"...इसके अनन्तर भविष्य भारत को गठित करने की प्रार्थना कर उन्होंने कहा—"भाइयो, हम सभी को कठोर परिश्रम करना होगा। अब सोने का समय नहीं है। वह देखो भारतमाता

धीरे-धीरे अपने नेत्र खोल रही हैं।...उठो और नये जागरण तथा नवीन उत्साह से पहले की अपेक्षा महान् गौरव से भूषित कर भक्तिभाव से उन्हें अनन्त सिंहासन पर प्रतिष्ठित करो।"...

स्वामीजी की वह देववाणी समस्त भारत को आलोड़ित करती हुई भारतवासियों की आत्मशक्ति के निकट, मनुष्य में जो ब्रह्म सुप्त हैं—उनके निकट, शाश्वत सन्देश के रूप में पहुँची। मृतप्रायों के भीतर भी प्राणों का स्पन्दन हुआ। कोलम्वो से आरम्भ करके समस्त भारत को स्वामीजी ने नवजागरण और महाशक्ति की वाणी सुनायी—"उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निवोधत" और सभी के कानों में "अभीः" मन्त्र डाल दिया।...

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपने 'भारत-आविष्कार' नामक ग्रन्थ में वर्त्तमान भारत को स्वामीजी की देन के सम्वन्ध में उनकी वाणी उद्धृत कर विशेष रूप से चर्चा की है। स्वामीजी की "अभीः" वाणी के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है,—"...किन्तु उनके भाषण और रचना के भीतर एक सुर वरावर ध्वनित हो रहा है, वह है, 'अभय' हो जाओ, वीर वनो, दुर्वलता का परित्याग करो, उपनिषद् की महान् शिक्षा यही थी।... स्वामीजी ने कहा है, वर्तमान में ऐसे वलिष्ठ मनुष्यों की आवश्यकता है, जिनकी पेशियाँ लोहे की तरह दृढ़ और स्नायु फौलाद की तरह कड़ी हो और जिनकी प्रचण्ड इच्छा-शक्ति ब्रह्माण्ड के गूढ़तम रहस्य का भेदन करने में समर्थ हो।"...

इसके अनन्तर स्वामीजी परमकुडी, मनमदुरा, कुंभकोणम होकर मद्रास पहुँचे। सभी जगह उन्हें भाषण देना पड़ा। सहस्रों मनुष्यों की हार्दिकता और आग्रह से वह मुग्ध हुए। मद्रास में १७ विजय फाटक वनाये गये थे। रास्ते में स्वामीजी पर पुष्प-वृष्टि होने लगी। युवक गाड़ी से घोड़ों को खोलकर जयध्वनियों के साथ उनकी गाड़ी खींच ले चले। विभिन्न भाषाओं में २६ मानपत्र दिये गये। अपार जनता के वीच में अभिनन्दन का उत्तर देने के लिए वह एक गाड़ी के कोच-वक्स के ऊपर

चढ़ गये; किन्तु चारों ओर की विशाल जनता की जयध्वनियों में भाषण देना सम्भव न हुआ।

स्वामीजी ९ दिनों तक मद्रास में रहे। इतने अल्प समय में अभिनन्दनों के उत्तर के अतिरिक्त और भी ५ स्थानों में उन्होंने भाषण दिये—"मेरी समर नीति," "भारतीय जीवन में वेदान्त का प्रयोग", "भारत के महापुरुष", "हमारे वर्तमान कर्त्तव्य" तथा "भारत का भविष्य।" यद्यपि स्वामीजी पृथ्वी की तीन श्रेष्ठ जातियों के सर्वोच्च सम्मान के अधिकारी हुए थे, तथापि उन्होंने अपने देशवासियों के द्वारा प्रदत्त सम्मान को वहुत ही दीन भाव से ग्रहण किया था। एक मानपत्र के उत्तर में उन्होंने कहा था, "मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे इस प्रकार की प्रशंसा के योग्य वनायें और मैं जीवन भर अपने धर्म और स्वदेश की सेवा कर सकूँ।"...

स्वामीजी की ओजस्वी वाणी ने भारतवासियों के जीवन में विप्लव ला दिया था। जातीयतावाद ने संगठन के भीतर से निर्भीक जागरण के द्वारा नया रूप लिया।...उन्होंने भविष्य भारत को अपनी-अपनी भूमिका ग्रहण करने के लिए आह्वान किया। "नवीन भारत—मोदी की दुकान से, भड़भूजे की भट्ठी के वगल से, कारखानों से, वाजारों से, झाड़ी-जंगल पहाड़-पर्वतों से निकल आये।"

स्वामीजी की पुकार का उन्होंने उत्तर दिया था। सदर्प मुद्रा में वे निकल आकर खड़े हो गये थे।...गाँधीजी ने अपने स्वाधीनता संग्राम में मनुष्यों को जो मुक्ति-सेना-वाहिनी रूप में पाया था वह भी स्वामी विवेकानन्द की वाणी के प्रभाव से ही सम्भव हुआ था। स्वामीजी थे भारत की स्वाधीनता-संग्राम के प्रधान सेनापति। उन्होंने जो मुक्ति-फौज का सूत्रपात किया था, उन्हीं के आत्मत्याग तथा रक्त के विनिमय से आज भारत ने स्वतन्त्रता का अर्जन किया है। उन्होंने जो "उत्तिष्ठत जाग्रत" रूप जागृति की वाणी सुनाई थी, उसीसे लाखों साधारण मनुष्य जाग उठे थे। उसी के फलस्वरूप २०वीं शताब्दी के आरंभ में पहले वंगाल और

उसके अनन्तर समग्र भारत में जातीय आन्दोलन ने आवेदन निवेदन के निर्जीव मार्ग से हट आकर तीव्र निर्भीक जातीयता-बोध तथा नूतन संगठन के भीतर से नया रूप लिया।...

❀ ❀ ❀ ❀

कोलम्बो से मद्रास तक लगातार भाषणों, अभिनन्दनों के उत्तर तथा जनसाधारण की उत्तेजना से स्वामीजी बहुत ही क्लान्त हो गये थे। इधर भारत के विभिन्न स्थानों से उन्हें ले जाने के लिए निमन्त्रण आ रहे थे। किन्तु उन सबों को भविष्य के लिए रख छोड़, कुछ विश्राम लेने के उद्देश्य से वह जहाज द्वारा मद्रास से कलकत्ते की ओर चल पड़े। २० फरवरी १८९७ ई० को स्वामीजी कलकत्ते पधारे। विराट् समारोह के साथ उनका स्वागत किया गया। कलकत्ते के नागरिकों ने तथा उनके गुरु-भाइयों ने उनका सादर अभिनन्दन किया। अब से स्वामीजी के जीवन में एक नूतन अध्याय का प्रारम्भ हम साश्चर्य चित्त से देखेंगे। उन्होंने आलम-बाजार मठ में गुरु भाइयों के साथ रहकर संगठन कार्य में आत्म-नियोग किया और युवकों को देश-मातृका की सेवा में आत्मबलि दान के लिए आह्वान किया। उनके आह्वान का स्वर अन्तर को रोमाञ्चित करता था। उन्होंने कहा था—"आगामी पचास वर्षों तक परम जननी मातृभूमि तुम्हारे आराध्य देवता हों।...प्रथम विराट् की पूजा, उनकी पूजा करनी होगी। सेवा नहीं—पूजा। ये मनुष्य, ये पशु, ये ही तुम्हारे ईश्वर और तुम्हारे स्वदेशवासी ही तुम्हारे प्रथम उपास्य हैं।" उन्होंने और भी कहा था—"बहु रूपे सम्मुखे तोमार छाड़ि कोथा खुँजिछो ईश्वर। जीवे प्रेम करे जेइ जन सेइ जन सेविछे ईश्वर" (ईश्वर अनेक रूपों में तुम्हारे सामने विराज-मान हैं, इन्हें छोड़कर कहाँ ईश्वर की खोज कर रहे हो। जीवों से जो प्रेम करता है वही ईश्वर की सेवा करता है।)

अनेक गुरु भाई उनके पास आकर खड़े हुए, १८९७ ई० के मार्च के

अन्त में स्वामी रामकृष्णानन्द जी मद्रास में वेदान्त प्रचार के लिए भेजे गये। स्वामीजी के सेवाभाव से अनुप्राणित होकर स्वामी अखण्डानन्द मुर्शीदावाद में दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सेवा में संलग्न हुए। उसी साल स्वामी त्रिगुणातीतानन्दजी दीनाजपुर जिले में एक दुर्भिक्ष-सेवा-केन्द्र स्थापित कर चारों ओर के अनेक ग्रामों में दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सेवा करने लगे। उसी साल स्वामी शिवानन्द वेदान्त प्रचार के लिए सिलोन (लंका) भेजे गये। स्वामी सारदानन्द और स्वामी अभदानन्द सफलता के साथ अमेरिका में वेदान्त प्रचार कार्य चला रहे थे। जन-सेवा-कार्य भारत तथा भारतेत्तर देशों में व्याप्त हो गया; किन्तु इस यंत्र को चालू रखने के लिए स्वामीजी का प्रचुर शक्तिक्षय हुआ था। उनके स्वास्थ्य की अवस्था देखकर उनके गुरुभाई आतंकित हो गये। डाक्टरों के परामर्श से कुछ गुरु भाइयों तथा मद्रासी और पाश्चात्य शिष्यों को लेकर उन्हें दार्जिलिंग जाना पड़ा; परन्तु वहाँ भी वह अधिक दिन न रह सके। उन्होंने एक समय कहा था—"एक ही चिन्ता की अग्नि मेरे मस्तिष्क में जल रही है। वह है—भारत के जनसाधारण की उन्नति-सम्पादन।" उस चिन्ता ने उन्हें एकदम अशान्त कर डाला था। पहाड़ से आकर स्वामीजी आलमबाजार मठ में संघ के संगठन कार्य में व्रती हुए।

दस

पाश्चात्यों की संगठन शक्ति ने उन्हें मोहित कर लिया था। संगठन बिना कोई भी स्थायी बड़ा काम सम्भव नहीं हो सकता। इसी कारण उन्होंने जन-सेवा-कार्य के विस्तार के लिए संन्यासियों तथा गृहस्थ भक्तों को लेकर "रामकृष्ण मिशन" रूप संघ की स्थापना की। संघ का उद्देश्य और आदर्श है—जनसाधारण की सेवा तथा आत्मिक कल्याण साधन। राजनीति के साथ उस संघ का कोई सम्पर्क नहीं था। स्वामी विवेकानन्द ने नर-नारायण-सेवा के लिए रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी। वही आजकल

वेलूड़ मठ के संन्यासियों द्वारा परिचालित रामकृष्ण मठ और मिशन रूप से धीरे-धीरे विस्तार प्राप्त कर रहा है।*

❀ ❀ ❀ ❀

रामकृष्ण-मिशन स्थापित होने के कुछ दिन वाद ही स्वामीजी उत्तर भारत के यात्रा में निकले। कुछ दिन अल्मोड़ा में रहकर पंजाव होते हुए वह काश्मीर पहुँचे। उसके अनन्तर स्यालकोट और लाहौर आदि स्थानों में भाषण देते हुए वे देहरादून होकर राजपूताना पहुँचे। वहाँ वे लाखों व्यक्तियों के संस्पर्श में आये। हरएक स्थान में भाषण दिये। अधिकांश भाषण हिन्दी में थे। उनकी वाणी ने सभी के अन्तर को उद्दीप्त किया था। फलस्वरूप देश के अनेक नेताओं ने देश में सेवा-व्रत-अनुष्ठान के लिए आत्मनियोग किया था। जनसेवा, गणउन्नयन, नारी-शिक्षा, नरनारायण

---

*वेलूड़ मठ से जेनरल सेक्रेटरी के द्वारा १९६२ के मई मास में प्रकाशित कार्य विवरणी में ज्ञात होता है कि वर्त्तमान भारत तथा भारत के वाहर के देशों में रामकृष्ण मठ और मिशन के १३८ स्थायी केन्द्र और २२ उप-केन्द्र हैं। उपकेन्द्र भी रामकृष्ण संघ के संन्यासियों द्वारा सञ्चालित होते हैं। इन केन्द्रों से इस साल चिकित्सा-विभाग में १२ अस्पतालों के अन्त-र्विभाग में २७८१६ रोगियों की चिकित्सा हुई और ६८ औषधालयों में ३७०२९६९ रोगियों को औषध पथ्यादि दिये गये हैं। शिक्षा विभाग के १७६ शिक्षा-केन्द्रों से ४३४०२ छात्रों और १८१२९ छात्राएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामों की उन्नति, जन-शिक्षा, नारी-कल्याण अनुन्नत श्रेणी के लोगों में शिक्षा का विस्तार और सेवा कार्य व्यापक रूप से हुए। ग्रन्थ-प्रकाशन-विभाग में अंग्रेजी तथा भारत की ८ प्रधान भाषाओं में श्रीरामकृष्ण भावधारा, जातीय संस्कृति के प्रचार के लिए अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। स्वामीजी ने रामकृष्ण मठ और मिशन के रूप में जिस यंत्र को चालू किया था, उस सम्वन्ध में कहा था—"इस यंत्र को फिर कोई रोक नहीं सकेगा।"

सेवा तथा जन-जागरण नये रूप में दिखाई पड़ने लगे। स्वामीजी का काम मानवात्मा को लेकर था, राष्ट्र को लेकर नहीं। मनुष्यों के भीतर ईश्वर मानो शृंखला से बँधा हुआ है। उन्हें मुक्त करने की चेष्टा ही वे सर्वत्र कर रहे थे। स्वामीजी की वाणी देवत्व की वाणी थीं। सबसे मुख्य बात यह है कि वे सभी जगह दरिद्र, उपेक्षित, अशिक्षित, अस्पृश्यों की उन्नति की चेष्टा करते थे। स्वामीजी की वाणी के प्रभाव के सम्बन्ध में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है—"आधुनिक समय में भारतवर्ष के भीतर स्वामी विवेकानन्द ने एक महती वाणी का प्रचार किया था। वह किसी आचार के अनुसार नहीं। उन्होंने देश के लोगों को पुकारकर कहा था— "तुम सभी में ब्रह्म की शक्ति है। दरिद्रों के भीतर देवता तुम्हारी सेवा पाना चाहते हैं।" इस बात ने युवकों के चित्त को जगा दिया है। इसी कारण उस वाणी का फल, देश की सेवा में आज विचित्र भाव से तथा विचित्र त्याग से प्रकट हो रहा है। उनकी वाणी ने मनुष्य को जैसा सम्मान दिया है, वैसी शक्ति भी दी है।...देश के युवकों में जो अध्य-वसाय का परिचय पाता है, उसके मूल में है स्वामी विवेकानन्द की वाणी।"...

लगभग ५ मास तक अथक भाव से उत्तर भारत के विभिन्न स्थानों में प्रचार के माध्यम से स्वामीजी ने सबको उत्साहित किया था। परन्तु उनकी जीवन-शक्ति मानो समाप्त हो चली थी। भग्न-स्वास्थ्य लेकर वे कलकत्ते लौट आये, किन्तु उनकी योजनाएँ एक-एक करके रूपायित हो रही थीं। कलकत्ता लौटकर ३ फरवरी १८९८ ई० को बेलूड़ में गंगा के पश्चिम तीर पर उन्होंनें श्रीरामकृष्ण संघ को प्रतिष्ठित करने के लिए एक पुराने मकान के साथ लगभग २१ बीघा जमीन खरीद ली। नयी जमीन में मंदिर तथा संन्यासियों के रहने योग्य घरों का निर्माण-कार्य आरम्भ हुआ। आलमबाजार से मठ सामयिक रूप से इस नये मठ की जमीन की दक्षिण ओर के एक किराये के मकान में स्थानांतरित हुआ।...

मिस मूलर, मिस मार्गरेट नोबल (निवेदिता), मिसेस ओलीबुल, मिस

मैकलाउड आदि पाश्चात्य शिष्या भारत में भारतवासियों की सेवा करने के लिए आयी हैं। शिक्षा-दीक्षा के माध्यम से उनका जीवन गठित करके स्वामीजी ने उन्हें नाना प्रकार के लोक-हितकर कार्यों में लगाया। उस समय गठन-मूलक कार्य में तथा कर्मी दल तैयार करने में उनका अधिकांश समय वीतता था।

अत्यन्त सावधान रहने पर भी उनका स्वास्थ्य क्रमशः विगड़ता जा रहा था। डाक्टरों के परामर्श से वे ३० मार्च को दार्जिलिंग रवाना हुए। कुछ दिनों के वाद ही कलकत्ते में प्लेग फैल जाने का समाचार पाकर वे कलकत्ते चले आये और साथ ही साथ महामारी के निवारण-कार्य में कूद पड़े। वहुत शीघ्र सेवा-शिविर-निर्माण, स्वेच्छा-सेवक दल गठन, वस्तियों का कतवार अपसारण तथा स्वास्थ्य-रक्षा के नियम सर्वत्र प्रचारित किये गये। युवक दल के दल सेवा संघ में सम्मिलित होने लगे।

एक गुरु भाई ने स्वामीजी से पूछा था—"इतना धन कहाँ से आयेगा ?" उन्होंने क्षण भर भी विलम्व न कर कहा—"क्यों, प्रयोजन होंने पर मठ की नयी जमीन तक वेच् दूंगा।" लेकिन वैसा नहीं करना पड़ा था। रामकृष्ण मिशन के उस कल्याणकारी कार्य के लिए प्रचुर अर्थ-सहायता आ गयी। देवदूत की तरह उस संकट-पूर्ण मुहूर्त में स्वामीजी कलकत्ते में आविर्भूत हुए थे। प्लेग शान्त हो गया।...

हिमालय में एक आश्रम स्थापित करने की योजना लेकर वे ११ मई को अल्मोड़ा के लिए चल पड़े। पाश्चात्य शिष्य, शिष्या उनके साथी हुए। उन्होंने मिस्टर और मिसेज सेवियर को हिमालय में आश्रम स्थापित करने के काम में लगा दिया। मद्रास से प्रकाशित "प्रवुद्ध-भारत" नामक पत्रिका कई कारणों से वन्द हो गयी थी। उन्होंने उस पत्रिका को अल्मोड़ा में लाकर अपने शिष्य स्वामी स्वरूपानन्द के हाथ उसके सम्पादन तथा सेवियर दम्पत्ति के ऊपर उसके संचालन का भार सौंपा। वाद में १८९९ ई० में मायावती स्थान में हिमालय का मठ स्थायी रूप से स्थापित हुआ और "प्रवुद्ध भारत" भी वहीं से संचालित होने लगा।

हिमालय का कार्य सुप्रतिष्ठित करके स्वामीजी पाश्चात्य शिष्यों को भारत के धर्म और संस्कृति के साथ परिचित कराने के लिए उन्हें साथ लेकर काश्मीर की ओर रवाना हुए, वे ३ मास से भी अधिक समय काश्मीर के विभिन्न स्थानों में रहे। वे तीर्थ-यात्रियों के साथ अमरनाथ के दर्शन करने गये थे। वहाँ केवल कौपीन धारण कर उस वरफपूर्ण गुफा में ध्यान मग्न हो गये थे। सदाशिव अमरनाथ ने उन्हें दर्शन देकर इच्छा-मृत्यु वर दिया था। उन्होंने क्षीरभवानी में भी ७ दिन तक रहकर तपस्या की थी।

काश्मीर की तीर्थ-यात्रा समाप्त कर स्वामीजी १८ अक्टूबर को बेलूड़ मठ लौट आये। काश्मीर में कठोर तपस्या के कारण उनका शरीर अत्यन्त अस्वस्थ और क्षीण हो गया था, परन्तु उन्होंने उस पर ध्यान नहीं दिया।

भारत में स्त्री-शिक्षा व्यापक रूप से प्रचलित करने के लिए १२ नवम्वर को स्वामीजी ने वागवजार में एक वालिका विद्यालय स्थापित कर निवेदिता के ऊपर उसके संचालन का भार दिया। अगर स्त्री-जाति का अभ्युदय न हुआ, महिलाएँ शिक्षित न हुईं तो भारत के कल्याण की सम्भावना नहीं है। उनका कथन है कि—"एक डैने से पक्षी का उड़ना सम्भव नहीं होगा।" महिलाओं के उन्नत होने से भारत पुनः जग उठेगा। उन्होंने भारतीय महिलाओं के आदर्श के सम्वन्ध में कहा था—"हे भारत, तुम भूल मत जाना, तुम्हारी स्त्री-जाति के आदर्श हैं सीता, सावित्री, दमयन्ती।" सतीत्व और मातृत्व के आदर्श को पूर्णतया अविकृत रखकर स्त्रियों को जगाना होगा। तभी उनका जीवन उज्ज्वल होगा और भारत का भविष्य भी उज्ज्वलतर हो जायगा। साथ ही यह भी कहा था कि स्त्रियों का यथार्थ कल्याण साधन करने के लिए केवल स्त्रियाँ ही समर्थ हैं। इस विषय में पुरुष दूर से उनकी केवल सहायता ही कर सकते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

नये मठ की जमीन में मकान आदि का निर्माण-कार्य समाप्त होते ही स्वामीजी ने ९ दिसम्बर को विविध उपचारों से पूजा और होम आदि करके

ीरामकृष्णदेव को वेलुड़ मठ में युग-युगान्तर का स्थायित्व देकर प्रतिष्ठित या। वेलुड़ मठ महान् तीर्थ में परिणत हुआ। उन्होंने कहा था—'महान् युगावतार श्रीरामकृष्ण देव 'वहुजनहिताय, वहुजनसुखाय' इस पुण्य क्षेत्र में दीर्घकाल तक विराजमान रहकर इस स्थान को सर्वधर्म का अपूर्व समन्वय केन्द्र वनाये रखें।"...

संसार के सामूहिक कल्याण और श्रीरामकृष्णदेव की भावधारा प्रचार के लिए उन्होंने एक मासिक पत्रिका के प्रकाशन का आयोजन किया। १८९९ ई० के १ माघ को स्वामी त्रिगुणातीतानन्द की सम्पादकता और संचालन में 'उद्वोधन' नामक मासिक पत्र वंगला भाषा में प्रथम प्रकाशित हुआ।...उन्होंने वेलुड़ मठ में गुरु भाइयों तथा शिष्यों को लेकर एक सभा का आयोजन करके सवको युगावतार श्रीरामकृष्णदेव की वाणी के समग्र विश्व में प्रचार का उपदेश दिया। स्वामी विरजानन्द और प्रकाशानन्द इन दो संन्यासी शिष्यों को उन्होंने प्रचार के लिए ढाका भेज दिया।

दल के दल कालेज के छात्र और शिक्षित लोग स्वामीजी के पास आने लगे। वे हर व्यक्ति को यथार्थ मनुष्य होने के लिए उत्साहित करते थे। वे कहते थे—"मैं ऐसे एक धर्म का प्रचार करना चाहता हूँ जिससे ठीक-ठीक मनुष्य तैयार हो सकें।" युवकों को सम्वोधित करके उन्होंने कहा था—"कुछ वीर-हृदय विश्वासी, चरित्रवान् और मेधावी युवक होने से मैं भारत को अपने ही पैरों पर खड़ा कर सकता हूँ।" भारतवर्ष में उन्होंने वहुत अल्प ही भाषण दिये थे। उनका विशेष काम था 'भूमि तैयार करना और मनुष्य वनाना।' उन्होंने वायुमण्डल में अपनी वाणी के रूप में जो वीज विखेरा था इसकी उपज, वर्तमान भारत की उन्नति के भीतर दिखाई पड़ती है। विंश शताव्दी में भारत के लोगों के भीतर जो परिवर्तन आया है, वह स्वामी विवेकानन्द ने भारत में जो जागरण उत्पन्न कर दिया था उसी का फल है। वर्तमान भारत में तिलक, गाँधी, सुभाष और जवाहर-लाल आदि ने भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम में जिस भूमिका को अपनाया था उसके पीछे थी श्री स्वामी विवेकानन्द की उद्वोधन और संगठन की वाणी,

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने अपने आत्म-चरित में लिखा है—"...विवेकानन्द मेरे जीवन में जब प्रथम प्रविष्ट हुए, उस समय मेरी अवस्था १५ साल से भी कम थी। उसके बाद से मेरे भीतर एक प्रचण्ड विप्लव आया और मेरे सब कुछ भाव उलट-पलट गये।...मेरी अस्थि-मज्जा के भीतर तक एक अभिनव जागरण उत्पन्न हो गया।...दिन पर दिन, सप्ताह पर सप्ताह, मास पर मास एकाग्र चित्त से मैं उनकी वाणी और रचनावली पढ़ने लगा। उनकी पत्रावली तथा कोलम्बो से अल्मोड़ा तक प्रदत्त व्याख्यानमाला में देशवासियों के प्रति बहुत ही कार्यकर उपदेश थे। वे मुझे विपुल भाव से अनुप्राणित करने लगे।" उन्होंने और भी कहा था कि स्वामी विवेकानन्द ही आधुनिक जातीय आन्दोलन के धर्मगुरु हैं।*

जनसमूह की शिक्षा और उन्नति के ऊपर ही जाति का भाग्य निर्भर करता है। उन्होंने कहा था—"...याद रखना, सभी देशों में ये ही जाति का मेरुदण्ड है।...दरिद्रों की कुटिया में ही भारतीय जाति का निवास है। परन्तु हाय! उनके लिए किसी ने कभी कुछ नहीं किया है।..." इसीलिए हम देखते हैं कि वे अनाथाश्रम, दातव्य-चिकित्सालय, जन-शिक्षा-

*१९२१ ई० में स्वामीजी के जन्मोत्सव के दिन बेलुड़ मठ में एक भाषण देते हुए महात्मा गांधीजी ने कहा था—"...मैं यहाँ असहयोग आंदोलन या चर्खा प्रचार करने नहीं आया हूँ। स्वामी विवेकानन्द के जन्म दिवस पर उनकी पुण्य स्मृति के प्रति श्रद्धांजलि अर्पण करने के लिए ही आज मैं यहाँ आया हूँ। मैंने स्वामीजी के ग्रंथों को अच्छी तरह पढ़ा है। उसके फलस्वरूप मेरे भीतर देश के प्रति पहले जो प्रेम था वह और भी बढ़ गया है।...युवकों से मेरा यह अनुरोध है कि स्वामी विवेकानन्द जिस स्थान पर रहते थे और जहाँ उन्होंने शरीर छोड़ा है, उन स्थानों की भाव-धारा थोड़ी बहुत भी ग्रहण किये बिना खाली हाथ न लौटें।" स्वामीजी के समकालीन तथा परवर्ती भारत के उज्ज्वल सन्तानों के जीवन पर स्वामीजी के जीवन और वाणी का प्रभाव कहाँ तक पड़ा था, वह महात्माजी के कथन से ही प्रकट हुआ है।

केन्द्र आदि स्थापित कर गरीब दुःखियों की सेवा के लिए शिष्यों को उत्साहित कर रहे हैं। उन्होंने और भी कहा है—"जो धर्म गरीब-दुःखियों का दुःख दूर नहीं करता, मनुष्य को देवता नहीं बनाता, क्या वह धर्म है ?" उनकी वाणी थी—"खाली-पेट धर्म-कर्म नहीं होता। पहले कूर्म देवता की पूजा आवश्यक है। अतः उस अन्न-संग्रह के लिए मैं मनुष्यों को रजोगुण-परायण होने का उपदेश देता हूँ।" युग के प्रयोजन से स्वामी विवेकानन्द ने सबको दरिद्र नारायण की सेवा तथा नरनारायण की पूजा के लिए आह्वान किया है।..

यद्यपि उनकी योजनायें एक-पर-एक कार्यरूप में परिणत हो रही थीं और भारत के कल्याण की चिन्ता में वे मग्न थे, तथापि स्वामीजी उनके पाश्चात्य देशों में आरब्ध कार्य की बात नहीं भूले थे; क्योंकि उसकी सफलता के ऊपर भारत की उन्नति भी बहुत कुछ निर्भर करती है। इधर उनका स्वास्थ्य क्रमशः बिगड़ता जा रहा था। इस कारण डाक्टरों के परामर्श से वे समुद्र-यात्रा के लिए तैयार हुए। इसबार स्वामी तुरीयानन्दजी को साथ लिया। निवेदिता भी उनकी नारी-शिक्षा-कार्य के लिए धन संग्रहार्थ इंग्लैण्ड जायँगी ऐसा निश्चय हुआ। वे भी साथ चलीं। १८९९ ई० के २० जून को जहाज कलकत्ते से रवाना होकर मद्रास, कोलम्बो, अदन, नेपल्स और मार्सल्स के मार्ग से चलकर ३१ जुलाई को वे लन्दन पहुँचे। इष्ट-मित्रों की वहाँ भीड़ लग गयी थी, किन्तु लन्दन में किसी सभा में उन्होंने भाषण नहीं दिया। १६ अगस्त को वे न्यूयार्क रवाना हुए। इस बार लगभग एक साल तक अमेरिका में रहे। अधिकांश समय उनको अमेरिका के पश्चिमांचल के लौस एंजेलिस, ओकलैण्ड, सैनफ्रांन्सिस्को आदि स्थानों में रहकर लगभग पचास से भी अधिक स्थानों में भाषण देना पड़ा था। पाश्चात्य में अपने आरब्ध कार्य का विस्तार देखकर वह बहुत प्रसन्न हुए।*

---

*बेलूड़ मठ के द्वारा १९६२ में प्रकाशित रामकृष्णमठ और मिशन की साधारण कार्य-विवरणी में लिखा है—वर्तमान में अमेरिका के विभिन्न

कैलिफोर्निया छोड़ने के पूर्व एक भक्तिमती शिष्या ने स्वामीजी को सेन्ट वलेरा प्रान्त में १६० एकड़ जमीन दी। स्वामीजी ने उस दान को ग्रहण कर वहाँ वेदान्त-साधना का एक केन्द्र स्थापित करने का प्रवन्ध किया। अमेरिका प्रवास के अंतिम अंश में उन्हें पेरिस नगर में होनेवाले धर्मेतिहास सभा में योगदान करने के लिए निमंत्रण मिला। शरीर स्वस्थ न रहने पर भी वे पेरिस आये और उस सम्मेलन म फ्रांसीसी भापा में उन्होंने जो छः भाषण दिये थे, उनका फल वहुत ही अपूर्व हुआ था। पाश्चात्यों के संस्कृतज्ञ पण्डितों तथा दार्शनिकों के विरुद्ध खड़े होकर उन्होंने वैदिक धर्म को प्रतिग्ठित किया। प्रथम भाषण में 'वैदिक धर्म प्रकृतिपूजा से उत्पन्न है'—पाश्चात्य पण्डितों के इस मत को शास्त्र और युक्ति-तर्क से खण्डन करके कि शिवपूजा वेद से उत्पन्न है और वेद ही हिन्दू, वौद्ध तथा भारत के अन्यान्य धर्मों के मूल है, इसे भी उन्होंने प्रमाणित कर दिया।

दूसरे भाषण में उन्होंने वुद्धदेव के वहुत पहले श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव और गीता, महाभारत के वाद नहीं रचित हुई, उसे प्रमाणित करके भारतीय नाट्य, चारुशिल्प, साहित्य और ज्योतिष के ऊपर ग्रीक-प्रभाव पड़ा है, इसे अस्वीकृत कर दिया। उपस्थित पंडित-मण्डलियों ने विशेष रूप से नवयुवकों में अनेक ने स्वामीजी के मत का अनुमोदन किया था।...स्वामीजी उस समय लगभग ३ मास पेरिस में थे। अनेक प्रतिष्ठित पंडित तथा मनीषी उनके भाव में प्रभावित हुए थे।

दूसरी वार पाश्चात्य भ्रमण में उन्होंने अमेरिका और यूरोप की संघटन शक्ति के पीछे जो हिंसक भोग-लालसा, स्वार्थ तथा प्राधान्य लाभ के

स्थानों में १० प्रधान केन्द्र और ८ रिट्रीट (भजनाश्रम) तथा आर्जेन्टाइना, इंग्लैण्ड और स्वीटजरलैण्ड में एक-एक स्थायी केन्द्र स्थापित हुए हैं। कुछ १८ संन्यासियों और कई ब्रह्मचारियों तथा उस स्थान के भक्तों की पृष्ठ-पोपकता से वह कार्य परिचालित हो रहा है। फ्रान्स देश में भी एक केन्द्र वन गया है।
—लेखक

लिए अदमनीय प्रचेष्टा तथा साम्राज्यवाद की लोलुप दृष्टि विद्यमान है, उसका आविष्कार किया था। पाश्चात्य सभ्यता के बाहरी रौनक में वे आकृष्ट नहीं हुए। उन्होंने निवेदिता से कहा था––"...पाश्चात्यों की जीवन-यात्रा अट्टहास की तरह है, परन्तु उसके नीचे रुदन है, उसकी परि-समाप्ति भी रुदन में ही होगी।..."

चार मित्रों के साथ वे २४ अक्टूबर को पेरिस छोड़कर वियेना, गेरी, सर्विया, रुमानिया, वलगेरिया, कुस्तुनतुनिया होकर, मिस्र देश में आये। योरोप का कोई भी शहर अव उन्हें अच्छा नहीं लगता था।... अपने हृदय में वे भूमा ब्रह्म का आह्वान सुन रहे थे। इस कारण भारत लौटने के लिए वे वहुत ही व्यग्र हुए और जो जहाज पहले मिला उसी से रवाना हो गये।

ग्यारह

वम्बई से वे एकाएक रात्रि के समय ९ दिसम्वर १९०० ई० को वेलुड़ मठ में उपस्थित हुए। जीर्ण देह और भग्न स्वास्थ्य लेकर वे लौटे थे। मठ में आते ही कैप्टेन सेवियर का मृत्यु-समाचार पाकर मिसेस सेवि-यर को इस दुर्वह शोक में सान्त्वना देने के लिए वे तुरत मायावती जाने को तैयार हुए। स्वामी शिवानन्द और शिष्य सदानन्द को साथ लेकर उस भीषण ठण्ड और तुषारपात के भीतर वे ३ जनवरी को मायावती पहुँचे। सेवियर दम्पत्ति ने भारत की सेवा में अपने हृदय का खून बहाया और उनके आत्मत्याग ने भारत को उन्नति के मार्ग पर बढ़ने में सहायता दी है। वे १५ दिन मायावती में रहे।

वेलुड़ मठ में लौट आकर स्वामीजी गठनमूलक कार्य में लग गये। अनेक व्यक्ति उनके पास आते थे। भारत के प्रत्येक प्रान्त से देश के नेता आते थे। वे सभी को भारत की सेवा में आत्म-वलिदान के लिए उत्सा-हित करते थे।

❀ ❀ ❀ ❀

पूर्वी वंगाल की जनता के विशेष आग्रह से स्वामीजी कुछ शिष्यों के साथ ढाका गये। वहाँ विपुल संवर्धना हुई। वहाँ उन्होंने दो भाषण दिये। एक विशेष दिन उन्होंने यात्रियों के साथ ब्रह्मपुत्र नदी में स्नान किया। उसके अनंतर चटगाँव में चन्द्रनाथ तीर्थ का दर्शन कर असम प्रान्त के ग्वालपाड़ा और गौहाटी होकर कामाख्या तीथ दर्शन करने के लिए गये। सभी जगह उनका स्वागत एवं सम्मान हुआ। शरीर अस्वस्थ रहने पर भी लोगों के आग्रह से उन्होंने गौहाटी में तीन भाषण दिये।...उसके पश्चात् शिलाङ्ग शहर में कुछ दिन रहकर भाषण आदि देकर वे वेलुड़ मठ मई मास के मध्य भाग में लौट आये। शरीर दिन पर दिन क्षीण होता जा रहा था। किन्तु उनका आत्मिक वल वढ़ता ही जा रहा था। भारत के विभिन्न प्रान्तों से अनेक व्यक्ति उनके पास आते थे। वे किसी को लौटा नहीं देते थे। सभी के अन्तर में भारत के प्रति प्रेम उड़ेल देते थे।

उस साल वेलुड़ मठ में स्वामीजी ने शास्त्र-विधि के अनुसार प्रतिमा में दुर्गा-पूजा, लक्ष्मी-पूजा और काली-पूजा की। वे कालीघाट में कालीमाता का भी दर्शन कर आये। स्वामीजी ने अद्वैतवादी संन्यासी होते हुए भी शास्त्र-विहित विभिन्न देव-देवियों को पूजा तथा उपासना को योग्य स्थान दिया।

मठ की जमीन पाटने के लिए सन्थाल लोग काम कर रहे थे। स्वामीजी उन सरल स्वभाव सन्थालों को बहुत चाहते थे और अन्तरंग रूप से मिलकर उनके सुख-दु:खों के भागी होते थे। एक दिन उन्हें पूड़ी-तरकारी-मिठाई-दही आदि से भरपेट भोजन कराकर उन्होंने कहा था—"ये लोग तो नारायण हैं। आज मैंने नारायण का भोग दिया।" उसके अनन्तर मठ के संन्यासियों तथा ब्रह्मचारियों की ओर लक्ष्य करके कहा था—"...अहा, देश के इन गरीव-दु:खियों के लिए कोई नहीं सोचता। जो लोग जाति के मेरुदण्ड हैं, जिनके परिश्रम से अन्न उत्पन्न होता है।...उनसे सहानुभूति रख, उनके शोक-दु:ख में सान्त्वना दे, देश में ऐसा कोई नहीं है। उधर देख, हिन्दुओं की सहानुभूति न पाकर मद्रास प्रान्त में हजारों पेरिया ईसाई वनते जा रहे हैं। ऐसा न सोच कि केवल पेट के कारण ही वे ईसाई होते

हैं। हम दिनरात उनसे कहते हैं कि 'छूओ मत' 'छूओ मत'! क्या देश में दया-धर्म भी कुछ है? केवल छूआछूत माननेवालों का दल! ऐसे आचार के मुँह पर मारो झाड़ू, मारो लात।...इन लोगों के न जागने पर माँ नहीं जगेंगी।..."

स्वामीजी की इस पुकार का देश के निवासियों ने उत्तर दिया था। गरीबों के दुःखमोचन, छूआछूत के परिहार और पतितों को सामाजिक वहिष्कार से वचाने के काम में देशवासी सन्नद्ध हुए थे।

❀ ❀ ❀ ❀

मार्च का महीना इसी तरह वीत गया और ३ महीने वे इस मर्त्यलोक में थे। शय्याशायी अवस्था में भी भारत के पुनः जागृत होने की चिन्ता उनके मन को व्याकुल रखती थी। १८९५ ई० के ११ जनवरी को शिकागो से स्वामीजी ने अपने एक मद्रासी शिष्य को लिखा था—"...जव तक प्राण मेरे शरीर को छोड़ न दे, तव तक प्रतिक्षण मैं काम करता चलूँगा और मृत्यु के वाद भी संसार के कल्याण के लिए काम करता जाऊँगा।"

स्वामीजी की आदर्श विचार-जगत् में था। वे संसार के कल्याण के लिए जो चिन्ताएँ छोड़ गये हैं, वे फल विना दिये नष्ट नहीं होंगी। अगली पीढ़ी के लोग स्वामीजी के भावों से अनुप्रेरित होकर उनके आरब्ध कार्य अपने हाथ में उठा लेंगे। मृत्यु के वाद भी उनके अदृश्य हस्त विभिन्न देशों के सहस्रों हृदयों में प्रकाश की वत्ती जला दिया करेंगे। उनके कार्य चलते रहेंगे।...

स्वामीजी महाप्रस्थान के लिए तैयार हो रहे थे, परन्तु उस समय भी अपने महान् गुरुदेव की तरह किसी भी प्रार्थी को नहीं लौटाते थे।...वे कहते थे—"यदि देश के लोगों के आत्माओं को प्रवुद्ध करने के लिए मुझे सैकड़ों वार मृत्यु-यातना का भोग करना पड़े तो भी मैं पीछे नहीं हटूँगा।"

क्रमशः संसारी बातों से वे उदासीन हो गये, गंभीर ध्यान में मग्न ही रहते थे। कामकाज के विषय में परामर्श पूछने पर कहते थे—"इन बातों में अब मैं नहीं पड़ना चाहता"। उनका अन्तर्मुख भाव देखकर गुरुभाइयों को शंका होने लगी। श्रीरामकृष्ण देव की बात याद आयी—"जब वह अपना स्वरूप जान जायेगा तब यह शरीर नहीं रखेगा।" एकदिन एक गुरु भाई ने पूछा—"स्वामीजी, आप कौन हैं, क्या वह आप जान गये हैं?" उन्होंने तुरंत गंभीर भाव से उत्तर दिया—"हाँ जान गया हूँ"। श्रीरामकृष्णदेव ने जिस अनुभूति के द्वार में ताला बन्द कर दिया था, अब समय आने पर उसे उन्होंने खोल दिया है।

देहत्याग के एक सप्ताह पूर्व उन्होंने एक सेवक से एक पंचांग मँगवाया। ध्यान से उसके पन्ने उलटते हुए शुभ मुहूर्त्त खोजने लगे। बाद में उस पंचांग को उन्होंने अपने पास रख लिया। उनका देहान्त हो जाने पर पंचांग देखने का आशय लोग समझ गये थे।

देहत्याग के ३ दिन पहले तीसरे पहर मठ के अहाते में टहलते हुए उन्होंने बेलूड़ मठ के एक विशेष स्थान (स्वामीजी के वर्त्तमान समाधि मन्दिर) को दिखाकर एक शिष्य से कहा—"मेरा शरीर छूट जाय तो यहीं दाह संस्कार करना"। अंतिम कई दिन उन्हें बहुत अस्वस्थता मालूम होती थी, परन्तु थे वे सदा प्रफुल्ल। मानो उनका शरीर भी ज्योतिर्मय हो गया था। कोई यह नहीं समझ सका कि अन्तिम दिन इतना निकट आ गया है।

शुक्रवार, ४ जुलाई, १९०२ ई०। वे खूब भोर में उठ गये। लगभग ८ बजे श्रीठाकुर के मन्दिर में जाकर दरवाजे-जंगलों को बंद करके वे ध्यान में बैठ गये। ११ बजे तक गंभीर ध्यान में मग्न रहे। इतने अधिक समय तक उन्हें ध्यान करते देखकर गुरुभाइयों को चिन्ता हुई। एक श्यामा-संगीत (काली माता का गान) गाते मंदिर से उतर कर वे आँगन में टहलने लगे। उस समय उनके भीतर एक अपूर्व भावान्तर उपस्थित हुआ था। स्वामी प्रेमानन्द पास ही में थे। उन्हें सुनाई पड़ा कि

स्वामीजी अपने मन में कह रहे हैं—'यदि एक और विवेकानन्द रहता तो समझ सकता कि यह विवेकानन्द क्या कर गया है।' सुनकर प्रेमानन्द जी वहुत विचलित हो गये, परन्तु स्वामीजी का गम्भीर भाव देखकर कोई प्रश्न पूछने का उन्हें साहस नहीं हुआ।

दोपहर के भोजन के वाद थोड़ा विश्राम लेकर १ वज से ४ वजे तक तीन घण्टे ब्रह्मचारियों को स्वामीजी ने व्याकरण पढ़ाया। तीसरे पहर प्रेमानन्दजी को साथ लेकर वह वेलूड़ के वाजार तक घूम आये। वेद-विद्यालय की स्थापना के वारे में वहुत-सी वातें हुईं।

सन्ध्या से पूर्व स्वामीजी मठ में वापस आये। मन्दिर में आरती का घण्टा वजते ही स्वामीजी दो मंजिल वाले अपने कमरे में जाकर गंगा की ओर देखते हुए खड़े हो गये। सामने गंगा के उस पार श्रीरामकृष्ण देव के शरीर का जिस स्थान पर दाह-संस्कार हुआ था, वह काशीपुर का महा-श्मशान था। सेवक ब्रह्मचारी को वाहर वैठाकर जप करने के लिए कहकर वे स्वयम् जपमाला हाथ में लिये पूर्वमुखी होकर जप में वैठ गये। करीव एक घण्टे के अनन्तर ब्रह्मचारी से घर के दरवाजे-जंगले खोल देने के लिए कहकर स्वामीजी जप-माला हाथ में लिये वाईं करवट लेट गये। घंटे भर के वाद उन्होंने करवट वदली—उस समय भी हाथ में जप-माला थी। उन्होंने एक लम्वी साँस छोड़ी। हाथ काँप उठा और एक दीर्घ निःश्वास छोड़ने के साथ ही साथ सिर तकिये से एक ओर लुढ़क गया। भ्रूमध्य में दृष्टि निवद्ध थी—चेहरे पर स्वर्गीय ज्योति झलकने लगी। उस समय रात के ९ वजकर १० मिनट हुए थे।...

दूसरे दिन शोभा-यात्रा के साथ स्वामीजी की देह का वेलूड़ मठ के दक्षिण-पूर्व कोने पर विल्ववृक्ष के पास और उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट स्थान में गंगा तट पर चन्दन काष्ठ आदि के द्वारा चिता-शय्या रचित करके वैदिक मन्त्र पाठ और स्तोत्रादि के भीतर दाह कार्य समाप्त हुआ।

❀ ❀ ❀ ❀

स्वामी विवेकानन्द की आत्मा देह-पिञ्जर से मुक्त होकर असीम के साथ मिलित हुई। संसार के लिए वह छोड़ गये—"वेदांत की वाणी, मानवात्मा के अमरत्व तथा एकत्व की वाणी, साम्य, मैत्री, स्वाधीनता तथा विश्व-भ्रातृत्व की अमोघ वाणी।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

विवेकानन्द-वाणी*

युगावतार

१—स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे ।
अवतार-वरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः ॥

(धर्मस्थापक सर्वधर्मों के मूर्त विग्रह, अवतारश्रेष्ठ श्रीरामकृष्ण, आपको प्रणाम है)।

२—रामकृष्ण अवतार में ज्ञान, भक्ति और प्रेम का पूर्ण विकास है। अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रेम, अनन्त कर्म, जीवों पर अनन्त दया।···

---

* लगभग साठ वर्ष पूर्व स्वामी विवेकानन्द चले गये हैं। अंग्रेज-शासित पराधीन भारत के प्रति ही उन्होंने ये बातें कही थीं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के अनन्तर जातीय समस्याओं का एक ओर जिस प्रकार आंशिक समाधान हुआ है, दूसरी ओर उसी प्रकार अनेक नयी-नयी समस्याओं के उत्पन्न होने से जातीय स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में भी देश के नेताओं तथा जन-साधारण को चिन्तित होना पड़ रहा है। अनेक भाषाओं, अनेक जातियों और विभिन्न धर्मों के आवास स्थल भारत भूमि में आर्थिक समृद्धि, सामाजिक स्वच्छंदता तथा जातियों और धर्मों के विवाद का अन्त होकर एक निरवच्छिन्न एकता कैसे और कितने दिनों में सुप्रतिष्ठित होगी यही अब विशेष रूप से विचारने का विषय हो गया है।

स्वामीजी को पुराने इतिहास में आवद्ध नहीं किया जा सकता अस्तु, उनकी वाणी को आज नये ढंग से ग्रहण करना होगा। स्वामीजी की वाणी के भीतर हम अपने राष्ट्रीय, सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान पा सकते हैं। वे वर्तमान और भविष्य के पथप्रदर्शक दूरदर्शी महान् ऋषि थे।

—सङ्कलयिता

३—समग्र हिन्दू जाति सहस्र युगों से जिन भावों का चिन्तन करता आया है, उन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) एक ही जीवन में उन सारे भावों की उपलब्धि की है। उनका जीवन सभी जातियों के वेदों का जीवित टीका-स्वरूप था।

४—सब भावों का ऐसा समन्वय संसार के इतिहास में और कहीं खोजने से नहीं मिलता। इसी से समझ लो, कौन देह धारण कर आये थे। उन्हें अवतार कहना उनकी महत्ता को घटाना है।

५—उन्होंने जिस दिन जन्म लिया, उस दिन से सत्ययुग का आगमन हुआ है। अब सारा भेदाभेद उठ गया है, चण्डाल से लेकर सभी जातियाँ आज प्रेम के पात्र हैं।···और वह झगड़ों को सुलझानेवाले थे, हिन्दू-मुसलमानभेद, ईसाई-हिन्दू आदि का भेद सब मिट गया।···इस सत्ययुग में एक वर्ण, एक वेद होगा और समस्त जगत में शान्ति और समन्वय स्थापित होगा। इस सत्ययुग की कल्पना के अवलम्बन से ही भारत फिर से नव-जीवनको प्राप्त करेगा।···

६—इस नये अवतार या शिक्षक की शिक्षा यह है कि अब योग, भक्ति, ज्ञान और कर्म के उत्कृष्ट भावों के समन्वय से नये समाज का निर्माण करना उत्कृष्ट होगा।

७—विश्वास करो, विश्वास करो, प्रभु की आज्ञा है—भारत की उन्नति निश्चय ही होगी, जनसाधारण को तथा दरिद्रों को सुखी करना होगा। और तुम्हें आनंदित होना चाहिए कि तुम्ही लोग उनके काम करने के निर्वाचित यन्त्र हो। धर्म का ज्वार आ गया है। मैं देखता हूँ कि वह समस्त विश्व को वहा ले जा रहा है—वह अदम्य, अनन्त और सर्वग्रासी है। सभी आगे बढ़ते चलो। अपनी-अपनी शुभेच्छा उसके साथ मिला दो। सारे हस्त उस मार्ग की बाधाओं को हटाते जाँय। जय प्रभु की जय।

८—जो-जो उनकी सेवा के लिए—उनकी सेवा नहीं—उनके बच्चे—गरीब दुःखी पापी तापी तक की सेवा के लिए तैयार होंगे, उनके भीतर

वे आयेंगे, उनके मुख मे सरस्वती विराजमान होंगी, उनके हृदय में महामाया महाशक्ति के रूप में वैठेंगी।···

भारत की महिमा

९--हमारी पवित्र मातृभूमि धर्म और दर्शन का देश है--धर्मवीरों की जन्म भूमि तथा त्याग का स्थान है। केवल इसी देश में सुदूर अतीत से वर्तमान समय तक मानव जीवन के महत्तम आदर्श विद्यमान हैं। तत्त्व-दृष्टि, भगवत्परायणता और नीति-विज्ञान की प्रसूति यह भारत भूमि मधुरता, कोमलता और मानव-प्रीति का स्थान है। यह सव अभी विद्यमान हैं और सारे भूमण्डल के अनुभव के वल पर मैं जोर देकर वता सकता हूँ कि इन विषयों में भारत अभी जगत के अन्य जातियों का पथप्रदर्शक है।···

१०--यह वही भारत है जो शताब्दियों के घात प्रतिघात, शत-शत वैदेशिक आक्रमण, शत-शत अभिनव सामाजिक प्रथाओं तथा आचारों के आविर्भाव होते रहने पर भी अभी जीवित है। सचमुच ही भारत का जीवन अमर और प्राण-शक्ति अपरिमित है। वह भू-पृष्ठ के किसी भी पर्वत से भी अधिक अटल है। वस्तुतः भारत का जीवन आत्मा के समान ही अनादि, अनन्त और अनिर्वाण है।··

११--ऐसे ही देश के हम सन्तान हैं। जिस समय ग्रीस का जन्म नहीं हुआ था, रोम की वात भी किसी ने सोची नहीं थी, वर्तमान यूरोप के पूर्वपुरुष विचित्र अंगरागों से रंजित असभ्य अरण्यवासी मात्र थे, उस सुदूर युग में भी भारत अपनी संस्कृति की साधना में तल्लीन था। और भी पूर्व जिस दूर अतीत का समाचार इतिहास में नहीं मिलता, जिसका रहस्य भेद करने में किंवदन्तियाँ भी संकुचित हो जाती हैं, उस समय से वर्तमान काल तक न जाने कितने ऊँचे-ऊँचे भावों, शांति-शुभेच्छा की वाणियों का प्रचार भारत से सारे संसार में हुआ है।···

१२--संसार के इतिहास की पर्यालोचना करो तो जहाँ कहीं भी किसी सुमहान आदर्श का सन्धान मिलेगा, वहीं दिखाई पड़ेगा कि उसका जन्म

भारतवर्ष में ही हुआ है। स्मरणातीत काल से ही भारत भूमि मानव समाज के निकट अमूल्य भावों की खान वनी हुई है।···यथार्थ में इसी देश से दार्शनिक और आध्यात्मिक भाव-तरंग उच्छ्वसित होकर बराबर संसार को प्लावित करती आयी है। पुनः भारतवर्ष से ही वैसा एक महा-प्लावन आयेगा जो मुमर्षु जातियों के अन्तर में नूतन जीवन और बल-वीर्य का सञ्चार करेगा।···

१३—यथार्थ में ही हमारी मातृभूमि के निकट संसार अपरिसीम ऋणी है। प्रभात के कोमल शिशिर-कण जिस प्रकार लोकचक्षु के अन्त-राल में मनोहर गुलाब की कलियों को खिला देते हैं, उसी प्रकार विश्व की विचारधाराओं के विकास में भारत का अवदान ही सहायक हुआ है और हो रहा है। अव्यर्थ फल प्रसू भारतीय भावपुञ्ज के नीरव अलक्ष्य प्रभाव से वैदेशिक चिन्ताजगत में अनेक बार क्रान्तिकारी परिवर्तन आये हैं! उसे कोई किसी समय जान न सका।···

१४—यदि पृथ्वी में ऐसा कोई देश हो जिसे 'पुण्य भूमि' कहा जा सके, यदि ऐसा कोई स्थान हो जहाँ पृथ्वी के सभी प्राणियों को अपने-अपने कर्मफल के भोग के लिए आना होगा, यदि कोई ऐसा क्षेत्र हो जहाँ भगवत्प्राप्ति के अभिलाषी जीवमात्र को अंत में आना होगा, यदि ऐसा कोई देश हो जहाँ मनुष्य जाति के भीतर सबसे अधिक शांति, धैर्य, दया, शौच आदि सद्गुणों का विकास हुआ है, यदि ऐसा कोई स्थान हो जहाँ आध्यात्मिक भाव तथा अन्तर्दृष्टि का सबसे अधिक विकास हुआ हो तो मैं निश्चित बता सकता हूँ कि वह हमारी मातृभूमि, यह भारत भूमि ही है।···

१५—हमारी इस पुण्यभूमि में एकमात्र धर्म ही जातीय जीवन की नींव है। भारतवासियों के जीवन-संगीत में धर्म ही प्रधान स्वर है।··· परिणाम में शुभ हो या अशुभ, हमारी जीवनी-शक्ति हमारे धर्म में निहित है।···इसी कारण इस धर्म के आदर्श का हम किसी तरह परित्याग नहीं

कर सकते। यदि वैसा करने जाँय तो हमें प्रचण्ड प्रतिक्रिया का सामना करना पड़ेगा।

१६—प्रत्येक व्यक्ति को जिस प्रकार जीवन का एक लक्ष्य स्थिर कर लेना पड़ता है, प्रत्येक जाति को भी वैसा करना पड़ता है। शत-शत युग पहले भारत ने वैसा ही एक लक्ष्य चुन लिया था और वह उसी को अपनाये रहेगा। कुछ भी क्यों न कहो, अपना लक्ष्य निर्धारित करने में भारत ने कुछ भी भूल नहीं की है।

१७—युगों से जातीय जीवनधारा जिस लक्ष्य की ओर प्रवाहित हो रही है, उसका परित्याग करने पर जाति का विध्वंस अनिवार्य है।··· राजनैतिक या सामाजिक उन्नति की आवश्यकता नहीं है—यह मैं नहीं कहता। केवल तुम्हें याद रखने के लिए कहता हूँ कि इस देश में इस प्रकार के लक्ष्य गौण हैं और धर्म ही मुख्य है।···

१८—आध्यात्मिकता ही हमारे जातीय जीवन का शोणित-प्रवाह है। यह प्रवाह जितने दिनों तक निर्मल और ओजस्वी वना रहेगा उतने दिनों तक हमारे कल्याण का पथ उन्मुक्त रहेगा और उतने दिनों तक राष्ट्र और समाज के सारे अभावों, यहाँ तक की देश की व्यापक दरिद्रता का भी, प्रतिरोधक मिल जायगा।...भारतीय राष्ट्र विलुप्त नहीं हो सकता। यथार्थ में जितने दिनों तक भारत का आध्यात्मिक दृष्टिकोण वना रहेगा और जितने दिनों तक भारत की जनता अपने प्राणस्वरूप धर्म को अपनाये रहेगी, उतने दिनों तक भारतीय राष्ट्र का विनाश नहीं होगा।···

भारत का भविष्य

१९—तुम लोग धर्म पर विश्वास करो या न करो, जातीय जीवन को जीवित रखना चाहो तो अध्यात्म-विद्या को सवल हस्तों से पकड़े रहना होगा। एक हाथ से उसे पकड़े रहो और दूसरा हाथ वढ़ाकर दूसरी जातियों में जो कुछ शिक्षणीय हैं, उनका आहरण करते चलो। परन्तु ध्यान रखना होगा कि वे संगृहीत विद्या हिन्दू के मूल जीवन-आदर्श के अनुकूल हों।...

२०—वैसा कर सकने पर भावी भारत ऐसा महिमामंडित तथा समुज्ज्वल हो उठेगा जैसा पहले किसी समय नहीं हुआ था। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उस शुभ दिन के आने में अब विलम्ब नहीं है।...इतिहास-प्रसिद्ध महापुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली महर्षि और ब्रह्मर्षि देश में जन्मग्रहण करेंगे।···

२१—हे भाइयो, हम सभी को भावी भारत के शुभ उद्बोधन कार्य में निरलस एकाग्रता के साथ व्रती होना होगा। अब निद्रा में समय बिताने का अवकाश नहीं है, हमारे ही प्रयत्न के ऊपर गौरवोज्ज्वल भविष्य भारत का अभ्युदय निर्भर है।···उठो, उसे जागृत कर देखो, नवजीवन प्राप्त कर हमारी देशमातृका पूर्व युगों की अपेक्षा अधिक महिमा के साथ अपने शाश्वत सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुई हैं।···

२२—सुदीर्घ निशा संभवतः समाप्त हो गई है। मर्मान्तिक वेदनाओं की शायद अवसान हो रही है। निस्पन्द शव की तरह सुषुप्त भारत शायद जाग उठा है।···जो अन्धा है, वही केवल देख नहीं सकता और जिसकी रुचि विकृत है, वह तो देखकर भी नहीं देखेगा कि हमारी देशमातृका अपनी सुदीर्घ गम्भीर प्रसुप्ति से जागृत हो रही है। किसी में शक्ति नहीं है कि इस जागरण को रोक सके। जागृत भारत फिर निद्रामग्न नहीं होगा। कुम्भकर्ण की तरह एक भयंकर विराट दानव सुप्तोत्थित होकर उठ खड़ा हो रहा है—बाहर की कोई भी शक्ति अब उसे दबाये नहीं रख सकेगी।···

२३—उठो, जागो, दीर्घ रात्रि समाप्त-प्राय है। अरुणोदय आसन्न है। हृदय में विश्वास रखो, श्री भगवान के अलँघ्य विधान से अब भारत का अभ्युदय अवश्यम्भावी है। देश के अभागे जनगणों की सुखसमृद्धि का दिन आ गया है।

२४—आध्यात्मिकता की बाढ़-सी आ गई है। स्पष्ट देख रहा हूँ कि यह दुर्दमनीय बन्धनमुक्त सर्वग्रासी ज्वार सारी पृथ्वी को बहा ले जायगा। सब लोग आगे बढ़ते चलो। सबकी ऐकान्तिक प्रचेष्टा इस ज्वार

की गति बढ़ा दे और तुम्हारे सम्मिलित उद्यम से उस मार्ग की बाधाएँ दूर हो जाँय।···

२५—मानव जाति को आध्यात्मिक भाव से प्रबुद्ध करना ही भारत का मूल जीवन-व्रत है, इसके अस्तित्व की परम प्रतिष्ठा तथा चरम सार्थकता है। तातार, तुर्की, मुगल और अंग्रेज का शासन रहते हुए भी यह जीवन धारा अबतक अव्याहत रही है।···

२६—मनुष्य को नवीन प्राणों से संजीवित करना—पशुस्तर के मनुष्य को देवमानव में परिणत करना—इस महान जीवन व्रत का निर्वाह करने के लिए हमारी देशमातृका सम्राज्ञी की तरह धीरे-धीरे पग रखती हुई अग्रसर हो रही हैं। स्वर्ग या मर्त्य में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो उनकी गति का प्रतिरोध कर सके।

वर्तमान अधःपतन

२७—आजकल कुछ लोग समझते हैं कि अतीत की ओर दृष्टि देनेवाले लोग भारी भूल कर रहे हैं। उनकी धारणा है कि प्राचीनता के प्रति ऐसा आत्यन्तिक ममता ही भारत की सारी दुर्गतियों का मूल कारण है। परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि इसकी विपरीत धारणा ही सत्य है।

२८—भारत की अवनति का अन्यतम कारण है, हमारी संकीर्ण दृष्टि और कर्मक्षेत्र का संकुचित होना। हमलोगों ने देश के बाहर दूसरी जातियों के साथ अपने विचार और कर्मधारा की तुलना नहीं की है। बाहरी संसार में क्या हो रहा है, उसकी कोई खबर हम नहीं लेते।··· यही भारतवासियों के मानसिक अधःपतन का प्रधान कारण है।···

२९—मेरा दृढ़ विश्वास है कि कोई भी व्यक्ति या जाति दूसरों से सम्बन्ध तोड़कर टिकी नहीं रह सकती। महत्त्व, शुचिता या कर्मनीति की मिथ्या दुहाई देकर ऐसी अपचेष्टा जो कोई भी करने गया है, उस व्यक्ति या जाति को थोड़े ही दिनों के बाद अनिवार्य संकट का सामना करना पड़ा है।···

३०—मुझे यथार्थ ही में शंका होती है कि शायद आज हमारा धर्म रसोईखाने में आवद्ध हो गया है। असल में हम लोगों में प्रायः सभी आजकल वैदान्तिक भी नहीं, पौराणिक या तान्त्रिक भी नहीं, हम केवल छूआछूत-पन्थी हैं। हमारा धर्म रसोईखाने में आवद्ध हो गया है। भात की हण्डी हमारी उपास्य देवता है और मन्त्र है—'मुझे छूओ मत, मैं पवित्र हूँ' यह वात और सौ वर्ष तक चली तो समग्र हिन्दू समाज पागल-खाने में वदल जायगा।...

३१—मेरी धारणा है जनसाधारण की कल्याण चिन्ता की उपेक्षा करके हमारी जाति घोर पाप कर रही है और उसी के फलस्वरूप वर्तमान अधः पतन है। जव तक भारत के हीन जातियों के जनसाधारण समादृत नहीं होते, जवतक उनके लिए उपयुक्त भोजन, शिक्षा आदि की व्यवस्था नहीं होती, तवतक हमारे सारे राजनैतिक कार्य असफल हो जायँगे—इस देश की उन्नति सम्भव न होगी।...

नारीशिक्षा और नारी कल्याण

३२—स्त्री जाति का अभ्युदय न होने से भारत के कल्याण की आशा नहीं है। एक डैने से पक्षी का उड़ना संभव नहीं है। इसी कारण श्री रामकृष्ण अवतार में स्त्रीगुरू ग्रहण की भी व्यवस्था हुई, उसी कारण मातृ भाव का प्रचार हुआ।...प्राचीन स्मृति कार मनु ने कहा है कि—'नारी के सम्मान से देवता तृप्त होते हैं'। परन्तु हमारी चिन्ताधारा इतनी ही कलुषित है कि हम स्त्री जाति को 'घृणित कीट' 'नरक का द्वार' इत्यादि कहते हैं।...

३३—तुमलोग स्त्रियों की निन्दा ही करते हो, किन्तु उनकी उन्नति के लिए अवतक क्या किया है वताओ तो? स्मृति-शास्त्र आदि की रचना कर कठोर विधि-निषेधों से उन्हें जकड़ कर बाँध रखा है कि वे अव सन्तान प्रसव के यन्त्र मात्र रह गई हैं। किन्तु जगज्जननी आद्याशक्ति की साक्षा-त्प्रतिमूर्ति नारियों की अवस्था की उन्नति किये विना ऐसा न सोचो कि तुम्हारी उन्नति का कोई अन्य उपाय है।...

३४—किस शास्त्र में ऐसी बात है कि स्त्रियाँ ज्ञान-भक्ति की अधिकारिणी नहीं होंगी?...भारतीय नारियों को सीता के पदाङ्को का अनुसरण करके अपनी उन्नति की चेष्टा करनी होगी—भारतीय नारी की उन्नति का यही एकमात्र पथ है।...

३५—इस सीता-सावित्री के देश में, पुण्यक्षेत्र भारत में अभी भी स्त्रियों का जैसा चरित्र, सेवाभाव, स्नेह, दया, तुष्टि, भक्ति दिखाई पड़ती है, पृथ्वी के और कहीं भी वैसा नहीं देखा।...भारत में ही केवल महिलाओं की नारी-सुलभ स्निग्ध लज्जा और संयम देखकर नेत्र शीतल हो जाता है।

३६—यथार्थ भारतीय नारी का आदर्श है सीता। इस देश में पूर्णाङ्ग नारी-चरित्र के सभी आदर्श केवल सीता के जीवन से गठित हुए हैं।... वस्तुतः सीता हिन्दू जाति के हृदय के साथ बिल्कुल मिल गयी है। प्रत्येक हिन्दू नारी के शोणित में मानो उनकी सत्ता अभी भी स्पन्दित हो रही है। हम सभी सीता के सन्तान हैं।...

३७—सीता मानो सतीत्व की मूर्त प्रतिमा हैं। पति के सिवाय किसी अन्य पुरुष का अंग उन्होंने कभी भी स्पर्श नहीं किया है। जो कुछ पवित्र, सुन्दर एवं निष्पाप हैं जिसमें नारी का नारीत्व है, सीता कहने से भारत में वही समझा जाता है।

३८—मैं जानता हूँ कि जिस जाति ने सीता की सृष्टि की है—यदि वह सृष्टि कल्पित भी हो, तो भी उस जाति की नारी के प्रति श्रद्धा संसार में अतुलनीय है।...

३९—भारतीय नारियों को आधुनिक बनाने के उद्देश्य से यदि हम उन्हें सीता के आदर्श से विच्युत करने की चेष्टा करें तो हमारा सम्पूर्ण उद्यम विफल होगा। भारतीय नारियों को सीता के पदाङ्कों का अनुसरण करके उन्नति के मार्ग पर चलना होगा। यही एक मात्र पथ है।...

४०—आर्य और सिमिटिक दृष्टिकोण में नारी का आदर्श संपूर्ण विपरीत है। सिमिटिक मत में नारी का साहचर्य ईश्वरभक्ति के लिए

हानिकारक है। इस कारण किसी प्रकार के धर्मानुष्ठान में नारी का अधिकार नहीं है । यहाँ तक कि एक छोटे से पक्षीका बलि देने का भी नहीं। किन्तु आर्यमत में स्त्री को छोड़ कर पुरुष किसी प्रकार का भी धर्मानुष्ठान नहीं कर सकता ।

वर्तमान कर्त्तव्य

४१—हमारे देश के लिए अब विशेष आवश्यकता है ऐसे बलिष्ठ मनुष्यों का, जिनकी मांसपेशियाँ लोहे की तरह दृढ़ हों, स्नायु फौलाद की तरह कठिन हों और जिनकी प्रचण्ड इच्छा-शक्ति ब्रह्माण्ड के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन करने में समर्थ हो। इस कार्य के साधन के लिए यदि समुद्र के अतल तल में जाना पड़े, यहाँ तक कि मृत्यु को भी आलिंगन करना पड़े उसमें भी वे किसी तरह मुँह न मोड़ें।

४२—एकमात्र शक्ति की ही हमें आवश्यकता है ।...तुम लोग प्रत्येक व्यक्ति अपने पैरों पर खड़े होकर सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाओ।...

४३—यदि उपनिषदों में ऐसा एक शब्द हो जो युगों से संचित अज्ञान-राशि के ऊपर बम की तरह विस्फुरित होकर उसे एकदम छिन्न-भिन्न कर सके, तो वह एकमात्र 'अभीः' है। यदि संसार को कोई धर्म सिखाना हो तो वह है निर्भीकता का धर्म। उठो, जागो, मोहाच्छन्न होकर अपने को दुर्बल न समझो।...

४४—हे मेरे युवक मित्रो! तुम लोग सबल हो जाओ, यही तुम्हारे प्रति मेरा उपदेश है। गीता पाठ की अपेक्षा फुटबाल खेल लेने से तुम लोग स्वर्ग के अधिक समीप पहुँचोगे। तुम्हारा शरीर कुछ मजबूत होने पर तुम लोग गीता अच्छी तरह समझ सकोगे।

४५—कोई भी यथार्थ में दुर्बल नहीं है। आत्मा अनन्त सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है। उठ खड़े हो जाओ। अपना स्वरूप प्रगट करो। अपने अन्तर्देवता का अस्वीकार न करके उसके अस्तित्व में विश्वास रखो। घोर

आलस्य, अत्यधिक दुर्वलता और प्रचण्ड आत्म विभ्रान्ति ने हमारी जाति को आच्छन्न कर डाला है।...

४६––आधुनिक हिन्दुओं से कहता हूँ कि–तुम लोग इस मोहजाल से मुक्त हो जाओ। अपना यथार्थ स्वरूप जानने की चेष्टा करो और दूसरों को भी वैसा करने की शिक्षा दो। मोहनिद्रा में अभिभूत जीवात्मा को जगाओ। आत्म-ज्ञान जागृत होने पर देखोगे क्षमता, महिमा, सतता, पवित्रता जो कुछ भी गुण सराहनीय हैं वे स्वतः ही आ रही हैं।...

४७––दुर्वल मस्तिष्क कुछ नहीं कर सकता। हमें उसे वदलकर सवल मस्तिष्क वनाना होगा, धर्म वाद में आयेगा।...संकीर्णता ही मृत्यु है और सम्प्रसारण ही जीवन है। यदि तुम्हें जीवित रहना है तो संकीर्ण घेरा छोड़ना होगा।...

४८––'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निवोधत'––उठो, जागो, आचार्यों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो।··ऐसा न सोचो कि तुम लोग दरिद्र हो। ऐसा न समझो कि तुम लोग वन्धुहीन हो। उठो, जागो।

४९––सदा "सोऽहं" कहकर अपने स्वरूप का होश सँभाले रहो। इस महावाक्य के प्रभाव से मन का सारा कूड़ाकरकट भस्मीभूत हो जायगा और अन्तर में जो अनन्त शक्ति प्रसुप्त है वह जागृत होगी और प्रचण्ड तेज से मूर्त हो उठेगी।

शिक्षा

५०––क्या शिक्षा पुस्तक की विद्या है?––नहीं। विविध विपयों का ज्ञान?––नहीं, वह भी नहीं।...यथार्थ शिक्षा शव्द से वहुत से शव्दों का संग्रह नहीं समझा जाता। समझा जाता है––मेधा, प्रतिभा आदि मानसिक वृत्तियों का परिस्फुरण।...मनुष्य के व्यक्तिगत संकल्पों को अच्छा और व्यवहारिक रूप से गठित कर लेने की पद्धति ही यथार्थ शिक्षा है।...

५१––मनुष्य के भीतर जो पूर्णता स्वतः ही विराजमान है, उसके विकास का नाम शिक्षा है। शिक्षा पद्धति का लक्ष्य होना चाहिये––मनुष्य

तैयार करना। जिस शिक्षा से जीवन में अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति मिलती है, वही यथार्थ शिक्षा है। कई परीक्षाएँ पास करने या अच्छा भाषण दे सकने से कोई शिक्षित नहीं कहलाता।...

५२—शिक्षा शब्द से मैं समझता हूँ कि यथार्थ ज्ञान का उपार्जन।... केवल पुस्तक की विद्या से काम न चलेगा।...चाहिए पाश्चात्य विज्ञान के साथ वेदान्त का समन्वय—ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और आत्मविश्वास ही उसका मूल मंत्र होगा।...

५३—विद्यार्थियों के लिये नितान्त आवश्यक है पवित्रता, यथार्थज्ञान की इच्छा तथा अध्यवसाय। छात्र जीवन में अध्यवसाय की आवश्यकता सर्व-विदित है। अध्यवसायी-विद्यार्थी को साधना में सिद्धिलाभ सुनिश्चित है।...

५४—शरीर को खूब मजबूत करने की शिक्षा लेनी होगी और सबको सिखाना होगा। देखते नहीं हो कि मैं अभी भी रोज 'डमबेल' खींचता हूँ।...शारीरिक परिश्रम करते रहना। देह और मन समान रूप से उन्नत होने चाहिए।

५५—संसार में यदि कुछ पाप हो तो वह है भय। कोई भी कार्य जो तुम्हारे भीतर की शक्ति को जगा दे वही पुण्य है और जो तुम्हारे शरीर और मन को दुर्बल कर दे वही पाप है। इस दुर्बलता का परित्याग करो।

५६—चालाकी से कोई महान कार्य सिद्ध नहीं होता। प्रेम, सत्यानुराग और महान विक्रम की सहायता से सारे कार्य सम्पन्न होते हैं।

५७—मैं दिव्य चक्षु से देखता हूँ, तुम्हारे भीतर अनन्त शक्ति है, उस शक्ति को जगाओ, उठो, उठो, कमर कस लो, लग जाओ।...मैं मुक्ति-आदि नहीं चाहता।...

५८—सबसे जाकर कहो—उठो, जागो, अब मत सोओ। सारे अभाव, सभी दुःख दूर करने की शक्ति तुम्हारे भीतर ही है। इस बात पर विश्वास रखो तभी वह शक्ति जाग उठेगी।...

५९—अब हमें आवश्यकता है, चरित्रगठन तथा इच्छाशक्ति को प्रवल करने की।...यथार्थ में इच्छाशक्ति का प्रभाव अपरिसीम है।...

६०—वैदेशिक नियन्त्रण से मुक्त होकर भारत के अपने ज्ञान भण्डार के विभिन्न विपयों के साथ-साथ पाश्चात्य विज्ञान को अपनाना हमारे लिए आवश्यक है।...और प्रयोजन है कारीगरी शिक्षा तथा श्रमशिल्प प्रसार के अनुकूल विविध शिक्षाओं के विस्तार का—जिसके फलस्वरूप नौकरी के पीछे न दौड़कर मनुष्य स्वयम् अपनी जीविका चला सके।

जनसाधारण की उन्नति

६१—याद रखो, दरिद्र के कुटीर में ही भारतीय जाति का निवास है। परन्तु हाय, उनके लिए किसी ने कभी कुछ किया नहीं है।...

६२—शिक्षायतनों के माध्यम से जनसावारण की उन्नति की भावना का प्रचार करना होगा। वहाँ से शिक्षा प्राप्त प्रचारक गरीवों के घर घर जाकर लौकिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा वितरित करेंगे।...हमारे देश के दरिद्र संप्रदाय इतने निःसहाय हैं कि वे स्कूल या पाठशाला में आने का अवसर ही नहीं पाते।...

६३—देश के सर्वत्र गाँव-गाँव घूमकर जनसाधारण के आत्मवल को जाग्रत् करना ही तुम्हारा तात्कालिक कर्त्तव्य है। जनसाधारण को समझाना होगा कि केवल आलसी वनकर वैठे रहने से काम न चलेगा।... उसके अनन्तर उनकी निज-निज अवस्थाओं की उन्नति का उपाय वता देना होगा।

६४—जनसाधारण की दुर्गति देखकर मेरा हृदय इतना भाराक्रान्त हो गया है कि अन्तर की व्यथा प्रगट करना भी सम्भव नहीं है।... जवतक भारत के कोटि-कोटि स्त्री-पुरुष अशिक्षित तथा भूखे रहेंगे तवतक उन्हें वंचित करके जो लोग उनके कल्याण के सम्वन्ध में नितांत उदासीन हैं, उनमें प्रत्येक व्यक्ति को ही मैं देशद्रोही समझता हूँ।...

६५—योरोप के अनेक नगरों में भ्रमण करते समय दरिद्र व्यक्तियों

के सुख, स्वच्छन्दता और शिक्षादीक्षा देखकर भारत के असहाय गरीबों की दयनीय दशा स्मरण हो जाती थी। और मैं आँसू वहाया करता था। इस अन्तर का कारण खोजते हुए मैंने समझा कि अन्तर केवल जनशिक्षा में है।...

६६–तुम लोग इन मलिन, मूक, गरीबों को अपने उपास्य देवता समझो और उनकी सेवा करो तथा उनके कल्याण की चेष्टा करो।... जिसका हृदय दरिद्रों की वेदना से विगलित हो जाता है, मैं उसी को महात्मा समझता हूँ; अन्यथा वह तो दुरात्मा है।...

६७––पृथ्वी के अन्य किसी भी धर्म में हिन्दू धर्म की तरह उदात्त-कण्ठ से मानवता की महिमा की घोषणा नहीं की गयी है, परन्तु कोई भी अन्य धर्म हिन्दू धर्म की तरह दरिद्रों और निम्न श्रेणियों का गला इस ढंग से दवा नहीं सकता।...

६८––भारत के उपेक्षित किसान , जुलाहा आदि निम्नश्रेणी के लोग विजेता का उत्पीड़न और स्वदेश वासियों की अवज्ञा सहते रहने पर भी स्मरणातीत काल से चुपचाप अपना काम करते आ रहे हैं और इसके लिए उन्होंने किसी समय भी उसका योग्य पारिश्रमिक नहीं पाया है।...

६९––हे भारत के श्रमिक सम्प्रदाय!...हे भारत के चिरपददलित श्रमिक वृन्द! तुम्हारा काम यथार्थ में ही अपूर्व है। मैं तुम्हारा अभि-वादन करता हूँ।...

७०––हमारे जनसाधरण सांसारिक विषयों में बहुत ही अनभिज्ञ हैं। परन्तु वे सज्जन हैं, क्योंकि यहाँ के दरिद्रों के साथ दुर्जनता का कोई सम्पर्क नहीं है। उनका स्वभाव विलकुल हिंसा-परायण नहीं है।...

७१––नया भारत निकल आये, निकल आये––हल पकड़कर, किसान की झोंपड़ी के भीतर से और तेली, माली, चमार, मेहतर की झोंपड़ियों के भीतर से, निकल आये––पंसारी की दूकान से भड़भूजे के भट्टी के वगल से। निकल आये––कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकल आये––झाड़ी जङ्गल पहाड़ पहाड़ियों से।...

७२—जो लोग संख्या में करोड़ों हैं, परन्तु हैं—गरीब नीच। परन्तु वे ही देश के प्राण हैं।...ये लोग हजारों वर्षों से अत्याचार सहते आये हैं। उससे पाई है अपूर्व सहिष्णुता। अनादि काल से दुःख भोग रहे हैं। उसे अटल जीवनी शक्ति मिली है।...

राष्ट्रीयता

७३—बहुत हुआ तो इंग्लैण्ड भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रचेष्टा में सहायक हो सकता है, किन्तु किसी अन्य की इच्छानुसार काम करने का कोई मूल्य है ऐसा मैं नहीं समझता।...पहले मनुष्य तैयार करो।...

७४—सामाजिक या राजनैतिक आदि किसी भी व्यवस्था के मूल में एक-एक मनुष्य की ईमानदारी रहती है। शासन संसद के किसी विशेष विधान के प्रवर्तन के ऊपर किसी राष्ट्र का महत्त्व निर्भर नहीं रहता।... पृथ्वी की सारी धन-संपत्ति की अपेक्षा असली मनुष्य का मूल्य बहुत अधिक है।...

७५—जब तुम्हारे भीतर इस प्रकार के खरे मनुष्य उत्पन्न होंगे, जो लोग देश के लिए सर्वस्व परित्याग करने को सन्नद्ध होंगे, तभी भारत सब ओर से महिमान्वित होगा।...

७६—दारिद्रय और अज्ञान के भँवर में डूब जाने वाले लाखों देश वासियों के कल्याण के लिए शत सहस्र उन्नत हृदय स्त्री-पुरुष जब आप्राण चेष्टा करेंगे केवल उसी समय भारत का नव जागरण सम्भव होगा।...

७७—भारत के जनसाधारण का उन्नयन—इसी एकमात्र व्रत में जो लोग मन प्राण नियोग कर सकेंगे ऐसे युवकों के भीतर जाकर काम करो।...पतित निपीड़ित औरे सर्वस्व खोये हुए लोगों के प्रति समवेदना से पूर्ण होकर उन्हें समस्त देश में सिंह विक्रम से प्रचार करनी होगी—मुक्ति की वाणी, सेवा की वाणी, सामाजिक उन्नयन और साम्य की वाणी।...

७८—मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दू समाज की वर्तमान अधःपतन के लिए धर्म को उत्तरदायी ठहराने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि

समाज की वर्तमान दुर्दशा का कारण धर्म नहीं है, वल्कि समाज में धर्म के यथार्थ प्रयोग का अभाव ही उसके लिए उत्तरदायी है।...

७९——धर्म की संहति स्थापित करना ही भविष्य भारत को संगठित करने का प्रथम सोपान है।...विभिन्न दिशाओं में फैली हुई आध्यात्मिक शक्तियों का सम्मिलन कर सकने से ही भारत में राष्ट्रीय एकता प्रतिष्ठित होगी।....

८०——...तुम भी वस्त्र से केवल कमर मात्र ढंककर दर्प के साथ पुकार कर वोलो——भारतवासी मेरे भाई हैं, भारतवासी मेरे प्राण हैं, यहाँ के देव-देवी हमारे ईश्वर हैं। भारत का समाज मेरी शिशु-शय्या है, मेरे यौवन का उपवन है, मेरे वार्धक्य की वाराणसी है। वोलो भाई—— भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है। भारत का कल्याण मेरा निजी कल्याण है। और दिन रात वोलो हे, गौरीनाथ, हे जगदम्वे, मुझे मनुष्यत्व दो। माँ, मेरी दुर्वलता कापुरुषता दूर करो। मुझे मनुष्य वनाओ।...

विविध

८१——जिसने दूसरों के लिए सव कुछ दे दिया है वही मुक्त है और जो लोग "मेरी मुक्ति मेरी मुक्ति" कहकर दिन-रात सर खपाते हैं वे 'इतो नष्टस्ततो भ्रष्टः' होंगे।...

८२——परोपकार ही एक सार्वजनिक महाव्रत है।...जन साधारण में तथा स्त्रियों में शिक्षा का विस्तार न होने से कुछ भी नहीं हो सकता।... गरीव निम्नश्रेणी के भीतर विद्या और शक्ति का प्रवेश जव से होने लगा तभी से यूरोप उन्नत होता चला।...

८३—— वहुरूपे सम्मुखे तोमार
छाड़ि कोथा खूँजिछो ईश्वर।
जीवे प्रेम करे जेइ जन
सेइ जन सेविछे ईश्वर॥...

अर्थात् अनेक रूपों में तुम्हारे सामने हैं, उन्हें छोड़कर कहाँ ईश्वर को

खोज रहे हो? जीवों पर जो व्यक्ति प्रेम करता है वही ईश्वर की सेवा करता है।

८४—दरिद्र, मूर्ख, अज्ञानी, पीड़ित —ये ही तुम्हारे देवता हों। इन्हीं की सेवा परम धर्म जानना।...जगत का कल्याण करना, चण्डाल तक का कल्याण करना—यही हमारा व्रत है, चाहे उससे मुक्ति आवे या नरक।... जब-तक शरीर है तब-तक काम विना किये तो कोई रह नहीं सकता। अतः जिस काम से दूसरों का उपकार होता है वही करना उचित है।... शरीर तो चला ही जायगा तो आलस्य में क्यों जाँय? कार्य के द्वारा अपने को व्यक्त करो बातों के द्वारा नहीं।

८५—जिस कर्म से आत्मभाव का विकास होता है वही कर्म है। जिस कर्म से अनात्म भाव का विकाश होता है वही अकर्म है।...

८६—महावीर के चरित्र को तुम्हें अब आदर्श बनाना होगा।... उनका जीवन-मरण के प्रति ध्यान नहीं था—वे महान जितेन्द्रिय और महान बुद्धिमान थे।...

८७—पिता-माता को प्रत्यक्ष देवता मानकर गृहस्थ सदा सब प्रकार के प्रयत्नों से उनकी सेवा करें। यदि माता-पिता प्रसन्न हों तो उस व्यक्ति पर भगवान भी प्रसन्न होते हैं।...माता, पिता, पुत्र, पत्नी, भ्राता, और अतिथियों को भोजन न कराकर जो गृहस्थ स्वयम् भोजन करता है वह पाप भोजन करता है।...

८८—जीव-सेवा से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है।...मैंने इतनी तपस्या करके यही सार समझा है कि हर एक जीव में वह विराजमान हैं।...जीव पर जो व्यक्ति दया करता है वही यथार्थ में ईश्वर की सेवा कर रहा है।...परोपकार ही धर्म है बाकी होम जप आदि पागलपन—अपनी मुक्ति की कामना भी अनुचित है।...

८९—प्रथम पूजा—विराट् की पूजा है। तुम्हारे सामने तुम्हारे चारों ओर जो लोग हैं उनकी पूजा करनी होगी—सेवा नहीं।...ये सब मनुष्य,

ये सब पशु—ये ही तुम्हारे ईश्वर और तुम्हारे स्वदेश वासी ही तुम्हारे प्रथम उपास्य हैं।...

९०—श्रद्धावान हो, वीर्यवान हो, आत्मज्ञान लाभ करो और परहित में जीवन लगा दो—यही मेरी इच्छा और आशीर्वाद है।...

९१—खाली पेट धर्म नहीं होता—ऐसा प्रभु कहते थे। भूखे को धर्म की बात सुनाना एकदम पागलपन है।...पहले भखे के लिए अन्न का प्रबंध करना पड़ेगा।...

९२—जिस दिन म्लेच्छ शब्द आविष्कृत हुआ और विभिन्न जातियों के साथ संयोग बन्द हुआ है, उस दिन से ही भारत का दुर्भाग्य आरम्भ हुआ है।...

९३—अपनी स्त्री जाति की अवस्था की उन्नति कर सकते हो? तभी तुम्हारे कल्याण की आशा है। जननियाँ उन्नत हुईं तो उनके यशस्वी वंशजों की महान कीर्ति देश का मुखोज्ज्वल कर सकेगी।...

९४—महिलाओं को यथायोग्य सम्मान देकर ही अन्य जाति के लोग बढ़ गये हैं। तुम्हारी जाति की जो इतनी अधोगति हुई है, उसका प्रधान कारण यह है कि तुमने शक्ति की इन जीवित मूर्तियों को यथार्थ सम्मान नहीं दिया है। वे नितान्त असहाय...परमुखापेक्षी हैं।...

९५—प्राचीन समय में स्त्रियों को ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार था। वर्तमान युग में वे उस अधिकार से क्यों वञ्चित रहेंगी ? अवनति के युग में जब पुरोहितों ने ब्राह्मण भिन्न अन्य वर्णों को वेद पाठ का अनधिकारी कहकर पृथक कर दिया उसी समय उन्होंने स्त्रियों को भी सब प्रकार के अधिकारों से वञ्चित कर दिया।...अग्निहोत्र की तरह अन्य वैदिक कर्मों में भी गृहस्थों को सहधर्मिणी का प्रयोजन था, परन्तु पौराणिक युग में प्रचलित शालिग्राम शिला आदि गृह देवताओं को स्पर्श करने का अधिकार भी स्त्रियों को नहीं है।...

९६—सामान्य जीवन में सभी को समानाधिकार है। परन्तु कृत्रिम जाति भेद ने —जो जाति के पतन का कारण है—गुणानुसार वर्णविभाग के

स्थान पर अधिकार स्थापन कर लिया है। धर्म के उच्च तत्त्वों की सहायता से उसे दूर करना होगा।...

९७—मेरे भारत, तुम जागो। तुम्हारी प्राणशक्ति कहाँ है? तुम्हारी मृत्युरहित आत्मा में।...भारत में समाज संस्कार और राजनीति का प्रचार धर्म-शक्ति के माध्यम से ही करना होगा।...

९८—भारतवर्ष यदि अपनी भगवत्-जिज्ञासा को अव्याहत रखता है तो उसकी मृत्यु नहीं होगी। परन्तु यदि वह राजनीति या सामाजिक संघर्ष में डूब जांय तो उसकी मृत्यु निश्चित है।...

९९—इस (पाश्चात्य) देश में आने के पूर्व भारत को मैं प्यार करता था। परन्तु अब भारतवर्ष की प्रत्येक धूलि कण तक मेरे लिए पवित्रता-मिश्रित है। भारत की वायु मेरे लिए पवित्र है। भारत पुण्य भूमि तथा तथा महातीर्थ है।...

१००—उपनिषदों में तुमने पढ़ा है—'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव'। मैं कहता हूँ 'दरिद्रदेवो भव', 'मूर्खदेवो भव।...एक व्यक्ति की मुक्ति के लिए मैं हजार वार नरक जाने को प्रस्तुत हूँ।...

१०१—हे भारत, मत भूलो—तुम्हारी नारी जाति का आदर्श है सीता, सावित्री, दमयन्ती। मत भूलो—तुम्हारे उपास्य हैं उमानाथ सर्वत्यागी शङ्कर।...मत भूलो—नीच जाति, मूर्ख, दरिद्र, अज्ञ, चमार, मेहतर तुम्हारे खून, तुम्हारे भाई हैं। हे वीर साहस का अवलम्वन करो। गर्व के साथ बोलो—मैं भारतवासी हूँ और भारतवासी मेरे भाई हैं...*

*ये वाणियाँ स्वामीजी की मूल वंगला रचना आदि से संकलित की गयी हैं।